बिनती

राधास्वामी मेरी बिनती, प्रेम से सुन लीजिये।
चित हटाकर जगत से, चरणों की छाया दीजिये।।1।।
मन हो निश्चल ध्यान धरने, से वह उकताये नहीं।
सुरत ठहरे और ठहरने से वह घबराये नहीं।।2।।
रात दिन सुमिरन हो रसना, नाम का रस ले सदा।
मैं भजूं हित चित से गुरू के, ना ही को सर्वदा।।3।।
रूप का हो ध्यान सुमिरन, नाम का अन्तर में हो।
शब्द का साधन भजन हो, तन की सुधबुध सारी खो।।4।।
तन मन में इन्द्रियों में बुद्धि, और तुम चित में बसो।
अंग संग दिन रात मेरे, घट के भीतर तुम रहो।।5।।
हाथ में आओ करूं, व्यौहार मैं उपकार के।
पांव ऐसे हों, चलूं मैं पन्थ में करतार के।।6।।
आंख में बैठो जगत मैं, आपकी मूरत लखूं।
कान में बैठो सदा मैं, शब्द अनहद का सुनूं।।7।।
चलते फिरते जागते, सोते रहो तुम साथ में।
सहज में आ जाये, परमारथ की निधि सिधि हाथ में।।8।।
मेरा आपा लय तुम्हारे, आपा में होजाये अब।
सुरत जागे गगन में, पृथवी में वह सो जाये अब।।9।।
तू का मैं का मिथ्या झगड़ा छूटे जीवन मुक्त हूं।
शुद्ध निर्मल आत्मा हो, सुख से आनन्द से जिऊं।।10।।
राधास्वामी तुम दया सागर, हो सत करतार हो।
ऐसी कृपा कीजिये, अब लोप यह संसार हो।।11।।

VISIT US ON:
www.akhandmanavtadham.in

महारामायण
साठवां अनुभव खण्ड
उत्तरार्ध प्रारम्भ
दूसरा समुल्लास
अवतार विषय (दूसरी बार)

गरूड़–'प्रभो! कोई कोई मनुष्य ऐसा कहते हैं कि ईश्वर अवतार नहीं लेता। ईश्वर का अवतार लेना असंभव है; क्योंकि ईश्वर व्यापक शक्ति है और वह अव्याप्य में नहीं आ सकती।'

भुशण्डी–'मनुष्य क्या कहता है और क्या नहीं कहता! इस पर मैं ध्यान नहीं देता। मेरा ध्यान केवल तुम्हारी तरफ है। तुम क्या करते हो। तुमने पहले भी यही शंका की थी। मैं उसका उत्तर दे चुका हूं। अब तुम कहते हो कि मनुष्य ऐसा कहते हैं। मनुष्य ऐसा भी तो कहते हैं कि ईश्वर नहीं है। इस का होना असंभव है। ईश्वर व्यापक है। जो व्यापक है वही अव्यापक में आता है जैसे गंगा का पोटने स्थल में व्यापक जल घड़े कुन्डे मटके, लोटे, गिलास, थाली सबमें आता है आयेगा, आया था और आ सकता है। जो अव्यापक है उसका व्यापक होना चाहे समझ में न आये लेकिन व्यापक शक्ति का अव्यापक में आना इतना कठिन नहीं है जो समझ से बाहर हो; क्योंकि यह गुण कर्म और स्वभाव में है। यह प्राकृतिक है।

यह सृष्टि नियम के अनुकूल है। इससे विपरीति या प्रतिकूल नहीं हैं।

ईश्व रनाम है ऐश्वर्य वाले का। एक राजा ऐश्वर्य वाला है उसका ऐश्वर्य उससे उतर कर प्रधान, दीवान, मंत्री, कोतवाल, कर्मचारी और प्यादा तक में आता है। यह वह मनुष्य अपनी फूटी आंख से चाहे तो नित्य राज काज के व्यवहार में देख सकता है। ऐश्वर्य का ऐश्वर्य के मंडल में उतरना उतरते रहना उतर आना स1ष्टि कर्म का धर्म और कर्म है और जब राजा अपने ऐश्वर्य का उतार अपने कर्मचारी और प्रतिनिधि में करता कराता है तो ईश्वर ने क्या दोष लिया है जो अवतार धारण न कर सके।

ईश्वर परतन्त्र है तब तो कुछ कहना सुनना ही नहीं है। ईश्वर स्वतंत्र है तब उसे अल्प शक्तिमान क्यों बनाया जा रहा है। वह सर्व शक्तिमान क्यों न माना जाये!

या तो ईश्वर नहीं है और जब है तो फिर उसका हैपना सब में उतरता रहेगा या न उतरेगा? उतरेगा और जब विषेष रूप में उतरेगा तो उसी को अवतार कहा जायेगा। सामान्य रूप में तो वह सब जगह में रहता है। विशेष रूप में कहीं कहीं कभी कभी और किसी किसी में उतरता है और किसी विशेष रूप को अवतार कहते हैं। मेरी समझ में इसकी संभावना हर समय में है। ईश्वर का नाम स्वयंभू (आप होने वाला) है। और वह आप जो चाहे हो सकता है और होता है। इसमें किसी को शंका न होनी चाहिए। जो मनुष्य ऐसी शंका करे उसे ऐ गरूड़! कह दो कि सुमेरू पर्वत पर आ जाय और मैं उसे समझा दूं। ऐसे मनुष्य तुम जैसे देवताओं के समझाने से नहीं समझेगें। मैं कौआ हूं और मेरी काग बुद्धि उनकी तुच्छ युक्ति की गुत्थी को सुलझा सकेगी। तुम अपनी शक्ति को विशेष रीति से अपनी चोंच में उतार लेते हो कि नहीं उतार लेते? मनुष्य अपने शरीर का सारा बल किसी एक अंग में उतार लेता है कि नहीं? जब मनुष्य ऐसा कर सकता है तो जीव जन्तुओं के सारे शरीर उसी के तो हैं। उनमें वह कैसे प्रवेश नहीं कर सकता! वह जो चाहे कर सकता है।'

गरूड़–'मुझे तो आपकी दया से संशय नहीं रहा। उसका समाधान आपके दर्शन मात्र से पहिले ही दिन हो गया था। वह मैं औरों की बात कर रहा था।'

कागभुशण्डी–'औरों को क्या देखना, औरों से क्या काम।
सकल देवता त्याग कर, भजिये राम का नाम।।

तीसरा समुल्लास
सच्चिदानन्द की समझ अवतार विषय से

गरूड़–'यह अवतार क्यों होता है।'

कागभुशण्डभ–'सत् चित् और आनन्द के विकास के लिये ब्रह्म सच्चिदान्द है। जो सत है उसकी सत्ता विकास पाये बिना नहीं रह सकती। सत् अस्ति है। वह अस्ति उस समय तक कैसे कही जायेगी जब तक उसकी सत्ता प्रकट न होगी।

जो चित है उसमें चित पना का विकास आवश्यक है और जो आनन्द है उसमें आनन्द का मान होना भी प्राकृतिक है।

ब्रह्म का सत चित और आनन्द रूप में उतरना और उतर कर प्रकट होना अवतार कहलाता है।'

गरूड़–'यह तीन गुण हैं–सत, रज और तम। क्या इन्हीं के रूप ओर नाम में यह अवतार हुआ करते है?'

कागभुशण्डी–'बात तो कुछ ऐसी ही है जैसा तुम समझ रहे हो। यह भी है और कुछ और भी है।'

गरूड़–'सत चित और आनन्द तीन हैं। लेकिन अवतार केवल तीन ही जुगों में नहीं होते उनके लिये चार युगी का प्रबंध हे ओर वह सत युग त्रेता, द्वापर और कलियुग कहलाते हैं।'

भुशण्डी–'युग भी तीन ही हैं–सतयुग, त्रेता और द्वापर और कलियुग इनकी पूर्ति और फिर अपने समता के रूप में लौटने का समय है।

वर्ण तीन हैं–ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य और शूद्र वर्ण इनकी पूर्ति है।

वेद तीन है–ऋग, साम और युजर और चौथा अथर्व वेद इनकी पूर्ति और लौटने की अवस्था है।

अवस्था तीन हैं–जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति। इन तीनों के अतिरिक्त चौथा पद उनकी पूर्ति है।

ब्रह्म का नाम ओं है। अ, उ, मृ, इन तीन नामें में उनके तीन पद हैं– सषष्टि, स्थिति और प्रलय और ओं नाम की चोटी पर जो बिन्दी और अनुस्वार है वह उसका चौथा पद है।

गुण भी तीन ही हैं–सत रज, तम और इनकी सम्मिलित अवस्था इनकी समता की पूर्ति है।

और इसी प्रकार जितना तुम विचार करते चलोगे तीन ही तीन को विकास के रूप में देखोगे और जब वह विकास पाकर फिर समता में चले जाते हैं तब वही इनका चौथा पद ठहराता है।'

गरूड़–'भगवान! आपने इस समय ऐसी विचित्र बात कही है जिस पर मैंने कभी विचार नहीं किया। सुनने को तो मैंने इन शब्दों को सुन रक्खा है, लेकिन इनका रहस्य क्या है, वह न मैंने जाना ओर न कभी इधर ध्या नही दिया।'

भुशण्डी–'समय समय की बात है। कभी बीज अंखुआता है, कभी पेड़ बनाता है, कभी फूलता है और चौथी अवस्था में वह फल लाता है। यह कोई नई बात नहीं है। यह स्वाभाविक प्राकृतिक और सषष्टिक्रम के अनुसार है। विचारशील पुरूष कोई कोई होते हैं।

गरूड़–'मैं आके इस नवीन सिद्धांत को आश्चर्य की दषष्टि से देखता हुआ इस पर विचार करना चाहता हूं। आज्ञा हो तो मैं पथ्थक पथ्थक करता चलूं और आप उनका उत्तर देते चलें।'

भुशण्डी–'प्रभो! स्तसंग का लाभ भी ऐसे ही होता है। राम ने बड़ी दया की कि आप सुमेरू पर्वत पर मेरे पास आ गये। आपके समागम से मुझे बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ।'

संत का दर्शन मिला, आनंद दायक समय है।
आप से मिलकर मुझे अब, प्राप्त सुख और चैन है।।
राम की जब तक अपार, ऐसी दया होती नहीं।
बुद्धि तब तक अपने मैल, और दोष को धोती नहीं।।
आप आये अच्छे आये, प्रश्न मुझसे पूछिये।
जो समझता हूं कहूंगा, मुझसे उत्तर लीजिए।।
आगे उत्तर में उत्तर खण्ड़, ही है ज्ञान गम।
है समाधान इसमें इस में है, दम और शम।।
धन्य जीवन है मेरा, अब आपका दर्पन मिला।
रू् के लखने परखने का मुझे दर्शन मिला।।
ऐ गरूड़! मैं जानता हूं आप पूरण काम हो।
इस समय मुझ पर दयालु, मेरे सीता राम हो।।
आपका दर्शन मिला, आनन्द मंगल मिल गया।
सोचने को बूझने को, बुद्धि दंगल मिल गया।।

चौथा समुल्लास

तीन (या चार) युगों के अवतार

गरूड़–'भगवान्! ब्रह्म को अवतार धारण करने की आवश्यकता क्यों हुई!'

भुशंड़ी– 'महात्मन! यह प्रश्न तो वैसे ही है जैसे कोई किसी अस्ति (हस्ती) से पूछे कि तू क्यों प्रकट हुई। महाराज! जब तक कोई अस्ति विकास रूप में आकर अपने प्रकाश को प्रकट न करे तो आप उस अस्ति को अस्ति कैसे कहोगे! यह तो उसका गुण है। यह स्वाभाविक है। समुद्र से पूछो वह क्यों लहराता है! सूरज से पूछो तुझे चमक दमक दिखाने की क्या आवश्यकता है! और वह तुम्हें क्या उत्तर देगा।'

जो सत है सत की वह सत्ता दिखायेगा अपनी।
जो चित बना है वह, चित्ता दिखायेगा अपनी।।
स्वयं वह जिसका है आनन्द, सुख का रूप है वह।
उसी में चैन है सुख, शान्ति का कूप है वह।।

गरूड़– 'बस! मुझे सच्चा उत्तर मिल गया। मैं दक्षिणी प्रश्न के उत्तर खण्ड़ में पहुंच गया। इस ब्रह्म का रूप सत है और उसके सतपने का विकास होना आवश्यक है। प्रभो! इस ब्रह्म का नाम ब्रह्म क्यों पड़ा?'

भुशुण्ड़ी–'ब्रह्म शब्द के दो भाग हैं। ब्रह और मनन। ब्रह कहते हैं बढ़ने को और मनन कहते हैं सोचने को। जो बढ़ता और सोचता है वह ब्रह्म है। यथा नामः तथा गुणः। जैसा जिसका नाम होता है वैसा ही उसका गुंण भी होता है। जो बात मैंने सत और असत के विषय में कही है वही इस ब्रह्म पद के अर्थ में भी समझ लो।'

गुरूड़–'सच है। इसके सच होने में कोई सन्देह नहीं है। यह उसका रूप है तब ऐसा नाम रक्खा गया।'

भुशुण्ड़ी– 'इस ब्रह्म के दो रूप हैं। एक आधार मात्र और दूसरा धार। आधार तो अधिष्ठान है। और धार वह है जो उससे निकलती, बहती और जारी रहती है। आधार रूप से वह कुछ करता धरता नहीं। धार रूप से जगत् की रचना इसमें होती रहती है। वह एक सागर के समान है। अपने रूप में स्थित रहकर लहराता रहता है और यह रचना उसी की लहरों के अन्तर्गत होती रहती है। तुम विचार करोगे तो इस ब्रह्म और ब्रह्म के नाम में विचार मात्र से तुमको निर्गुण और सगुण का दर्शन मिलेगा। इस शब्दों की जड़ यहां है और यह वैसा ही है जैसे तुम या और कोई प्राण धारी प्राणी अपने निज स्वरूप में स्थित रह कर सांस लिया करता है। व्यवहार इसकी सांस में है। अब किसी वस्तु को देखो उसमें यह दोनों गुण किसी न किसी अंग में तुमको दिखाई दे जांयगे।

सांस आती है सांस जाती है।
सांस यह सांस में समाती है।।
पहिली रेचक है दूसरी पूरक।
तीसरी को समझलो तुम कुम्भक।

जीव में जन्तुओं में परखो इसे।
वक्ष और तत्वओं में भी निरखो इसे।।
है बिना सांस के कहां प्राणी।
समझे यह बात कोई विज्ञानी।।
ब्रह्म मय यह जग है ब्रह्म है सब।
ब्रह्म तब था तो ब्रह्म ब्रह्म है अब।।

गरूड़–'मेरी अन्तर्दर्ष्टि खुल गई। मैंने विचार दर्ष्टि से इस दर्श्य को देख लिया। यह अवतार कितने होते हैं?

भुशण्डी–'नाना भांति राम अवतारा।
रामायण शतकोटि अपारा।।

इनकी गिनती गिनना मेरी बुद्धि की सामर्थ्य से बाहर है। हां, जहां तक मैंने विचारा है मुख्य अवतार नौ कहलाते हैं और नौ होते हैं।'

गरूड़–'कौन कौन?'

भुशण्डी–'सतजुग में चार–जो मच्छ, कच्छ, बारह और नर्सिंह कहलाते हैं। त्रेता में तीन, जिनके नाम हैं बावन, परशुराम और राम। राम ने इस समय अवतार धारण कर रक्खा है, जिनकी कथा तुमने मुझे आकर सुनाई और जिन पर तुमको संशय हुआ था कि वह ब्रह्म के अवतार नहीं हैं। द्वापर में कृष्ण और बुद्ध के दो अवतार होंगे। यह सब मिलकर नौ होते हैं और गिनती भी केवल नौ की मानी गई है।'

गरूड़–'ठीक है। फिर क्या और अवतार न होंगे?'

भुशण्डी–'कलियुग में केवल एक अवतार कल्कि भगवान का होगा जो इस चतर्युगी में राम का दसवां अवतार कहा जायगा। इसके विषय में कल प्रश्न करना। कलियुग चतुर्युगी का चौथा पद है। यह मैंने तुमको पहिले से कह रक्खा है। इस गिनती के अनुसार राम के दस अवतार तुम मान सकते हो।'

पंचवा समुल्लास

अवतारों के विषय में क्यों? का प्रश्न

गरूड़ ने पूछा–'यह भेद है–चार, तीन, दो, एक की उल्टी गिनती अवतारों के विषय में क्यों गिनाई? सतयुग में चार, त्रेता में तीन, द्वापर में दो और कलियुग में एक अवतार क्यों होते हैं या क्यों होगें?'

कागभुशण्डी जी ने उत्तर दिया–'अवतारों में ऐसा ही होता है और होना भी ऐसा ही चाहिए।

सत शब्द संस्कृत धातु अस (होना) से निकला है और युग कहते हैं मिलाप या समय को। सत के मिलाप को सतयुग कहते हैं और अस (होना) जीवन है। जहां जीवन ही जीवन और जीने ही जीने का भाव, विकास और प्रकाश हो वहां सम्पूर्ण जीवन ही जीवन रहता है और उसके चारों अंग या चारों पद बराबर होते हैं। उनमें बढ़ाव घटाव नहीं होता। जीवन ही जीवन पूरा रहता है इसलिए इसके चार अवतार हैं। मच्छ, कच्छ, वाराह और नृसिंह।

मच्छ या मस्य संस्कृत धातु मद (सुख) से बना है। यह जीवन ही जीवन है और जीवन ही जीवन का सुख है। जीवन के अतिरिक्ति और कोई भाव, विकास या प्रकाश नहीं रहता। जैसे पानी में मछली तो बन जाती है लेकिन वह मछली पानी ही में रहती है, पानी से बाहर नहीं आती। पानी ही इसका जीवन होता है। जीवन जीवन ही में रहता है। वह केवल जीवन ही जीवन है। और जीवन के सम्पूर्ण विकास या चार पांवों वाले प्रकाश का मान मछली में दूखा जाता है, जिसमें केवल सर ही सर है। यह समयुग का पहला अवतार है।

कूर्म शब्द संस्कृत कू (उल्टी) और उरमी (तेजी) से निकला है। उल्टी तेजी वाले का नाम कूर्म है। इसमें भी जीवन ही का विकास, भाव और प्रकाश है। जहां कोई बात ऐसी हुई जो जीवन की बाधा है तब कूर्म बिना समझे बूझे स्वाभाविक रीति से उने अंदर में लौट आता है। इसी उपेक्षा के कारण इसका नाम कूर्म रक्खा गया है। कूर्म कछुए को कहते हैं। यह सतयुग का अवतार है।

वाराह संस्कृत धातु वर (सबसे अच्छा और श्रेष्ठ) और हन (मारन) से बना है। जो सबसे अच्छी मार मारे वह वाराह है। और यह सचमुच अच्छी मार का मारने वाला और मारने में श्रेष्ठ है। इसलिये इसका नाम वाराह रक्खा गया है। इसे सूअर भी कहते हैं। सूअर के लिये संस्कृत शब्द शूकर (शू–शब्द) और कर (करना) बोला जाता है। शूकर गुर्राता है। यह सतयुग का तीसरा अवतार है जो गुर्राहट के साथ है।

नर्षसिंह–'संस्कृत धातु नर (मनुष्य) और सिंह (चौपाया–चार पांव से चलने वाल पशुओं को कहते है) से बना है। जिसका सिर मनुष्य का हो और धड़ पशु का हो और चार खुरों से चले वह नर्षसिंह है। यह नहीं कि सिर तो व्याघ्र और शेर का हो और चार पावों से चलकर और चरों पांवों को निकाल कर दिखा देता कि सतयुग का चार पद वाला युग अब समाप्त हो गया। यह चौथा अवतार है।

हे गरूड़! पुराणों की यह शिक्षा सर्षष्टि क्रम के अनुसार है और यही दष्श्य हमारी तुम्हारी आंखों के सामने पल छिन रहता है। कोई अंधा काना तिरछा हो उसे न दिखाई दे तो भी उसकी आंखों का दोष है। मैं आगे चल कर तुमको स्पष्ट रीति से समझाऊँगा कि पुराणों का कथन निर्दोष, पूर्ण और विचार उत्तेजक है।

सतयुग में केवल जीवन, जीवन का विकास प्रकाश, और भाव रहता है। जीवन के अतिरिक्ति और कुछ नहीं रहता।

सतयुगी जीवन है पूरा, चार पग वाला गरूड़।
जो न समझे भेद को, है कुमग वाला गरूड़।।
मत्स्य है और कूर्म है, वाराह है नर्षसिंह।
चार जीवन की अवस्था, चारों ही है ब्रह्म।।
सिर बना तब मत्स्य है, और धड़ बना कछुआ हुआ।
क्षीर सागर मथके चौदह, रत्न के धन को लिया।।
क्षीर सागर से निकल कर, खग से पष्थ्वी उठा।
टाया उ से बाहर अपने, गुणों को प्रगट कर दिया।।
फिर बना नर्षसिंह नर, और पशू के देह का मेल है।
ब्रह्म जीवन का यह भौतुक, देखो कैसा खेल है।।
यह है सतयुग, सतयुगी जीवन के हैं अवतार चार।
ऐ गरूडद्व! बातों का मेरे, सुनके कर लीजे विचार।।
मैं नहीं तुम से छुपाता, भेद कहता हूं सही।
तुम समझलो बूझलो, दुर्मति न मन में फिर रही।।
संशय का जीवन नहीं अच्छा, यह दुख का रूप है।
संशय दुख केवल नहीं, यह दुख का गहरा कूप है।।
राम आये इस जगत में, ब्रह्म के अवतार बन।

छोड़ कर नगरी अयोध्या, को चले यह सूने बन।।
मन में देखा चित्र जीवन का, जो आये चित्रकूट।
मरा खरदूषण को सर से, फेंका डाला दोष पोट।।
चढ़ गये लंका वहां, रावण को मारा बाण से।
साथ सीता को लिया, लौटे अवध को शान से।।
चारों भाई मिल गये, सतयुग की महिमा की दिखा।
दोष त्रेता का मिटा, सतयुग का सत प्रगट किया।।
त्रेता को तब बनाया, किसने? सीताराम ने।
वषद्धि और उन्नति दिखाया, किसने? सीताराम ने।।
राम ही हैं ब्रह्म पूरन, ब्रह्म के अवतार हैं।
ऐ गरूड़! शंका न कीजो, राम सत करतार हैं।

छटा समुल्लास

क्यों? लगातार त्रेता के अवतार

गरूड़–'त्रेता में तीन ही अवतार क्यो हुए?

भुशुण्डी–'चित शक्ति कुछ विशेषता के साथ आ गई। जीवन ने उसे अपने में स्थान दिया। उसका एक अंग या एक पद दब गया और तीन टांग रह गई। तीन टांग–जीवन या सत की और एक चित की। चित का उभार हुआ।

त्रेता संस्कृत धातु त्रय (रक्षा) से निकला है। इस युग में 'रक्षा' और सुरक्षा का विचार घने पन के साथ उत्पन्न हो जाता है। चित शक्ति अपने साथ रक्षा के चिंतन ओर चिन्ता को लाती है। राक्षस (निज रक्षा करने वाले स्वार्थी) अधिकता से प्रगट हो जाते हैं। अपनी रक्षा के लिये खाना, अपनी रक्षा के लिये पीना, अपनी ही रक्षा के लिये उद्यम उद्योग और तीन कर्म करना यह राक्षसों का धर्म होता है। यह तिटंगा धर्म है। ब्रह्म के अवतार इसकी पूर्ति के लिये होते हैं। और यह तीन हैं और यह तीनों अपनी अपनी बारी पर उस टूटी हुई टांग की पूर्ति करते हैं।

पहिला अवतार वामन है, जो संस्कृत धातु वम (मुंह से निकालना) से बना है। नर और पशु की सम्मिलित अवस्था की नषसिंह के अवतार से समाप्ति हो गई। पशुपने का अभाव हुआ नरपने की अधिकता और विशेषता आने लगी और जीवन न वामन (छोटे मनुष्य–वामन) का रूप धारण किया

जो मुंह से अपनी आवश्यकता को प्रकट करता है, बोलता है और बोलने ही से उसका काम होता है। करना धरना अब भी नहीं। बोलने मात्र से रक्षा होती है। यह त्रेता का पहिला अवतार है। जो पांचवे मंडल या लोक से आया जिसे जन लोक कहते हैं। सतयुग के चारों अवतार भू, भुवः महः से आये थे।

परशुराम त्रेता का दूसरा अवतार है। यह शब्द संस्कृत धातु परशु (फरसा या फावड़ा) और राम अरमने वाला, प्रसन्न होने वाला) से बना है। जो फावड़े और कुल्हाड़े से काम लेकर प्रसन्न हो वह परशुराम है। इसने क्या किया? स्वार्थी और स्वरक्षक क्षत्रियों का नाश करके सतयुगी जीवन को एक टूटी हुई टांग की पूर्ति की। क्षत्री महा अहंकारी हो गये थे। अपनी भलाई चाहते थे। औरों की रक्षा और भलाई का उनको ध्यान नहीं था। इसलिए परशुराम ने उन्हे अपने परसे के घाट उतार कर त्रुटि की पूर्ति की।

क्षत्रियों का नाश हुआ। परशुराम का करतब बस इतना ही था। इधर क्षत्री मरे, उधर दक्षिण के ब्राह्मणकुल में निज अर्थ के साधन मे रहने वाले राक्षस (अपनी ही रक्षा करने वाले) अधिकता के साथ उत्पन्न हो गये। क्योंकि परशुराम ने क्षत्रियों का राज काज छीन कर ब्राह्मणों ही को दिया था, यह ब्राह्मण राज को पाकर ऐसे घमंड़ी हो गये कि अपने अतिरिक्त औरों को तुच्छ समझने लगे। बहुत ऊधम मचा। अत्याचार फैल गया। वह पष्थ्वी पर बोझ हो गए। देवताओं का नाक में दम आ गया। इस दशा में राम का ब्रह्म अवतार क्षत्री कुल में हुआ। इन्होंने राक्षसों को बाण के घाट पर लगाया। राक्षस महाबली जोधा, विद्या बुद्धि निपुण, कला कौशल में प्रवीण थे। राम ने प्रकट होकर इनका नाश कर दिया। मर्यादा की शिक्षा दी। जगत को मर्यादा बद्ध कर दिया और इसी की सहायता से टूटी टांग की पूर्ति हुई थी, और राम का अवतार सातवें लोक सत लोक से हुआ था। इसलिए इन्हें पूर्ण ब्रह्म का अवतार समझा जाता है। उनकी बराबरी किस से हो सकती है। उनके ब्रह्म के अवतार होने में किसी को शंका न करनी चाहिये।'

गुरूड़ ने पूछा– 'भगवन! सतयुग की चार टांगो का तो आपने पूरा पूरा पता बता दिया, लेकिन त्रेता के तिटंगे पने को भेद मुझे नहीं दिया, क्योंकि हम मनुष्य में तीन टांग नहीं देखते।'

भुशण्ड हंसे–'तुमने राम रावण का युद्ध देखा। उसमें भाग भी लिया और फिर भी शंका! अच्छा क्या हुआ! इसका भी समाधान किये देता हूं। राम

ने वानरों की सेना इकट्ठी की थी। वानर (संस्कृत वा–सदृश्य और नर–मनुष्य) मनुष्य के समान जो नर है वह वानर है। इसके पूंछ होती है। यह इसकी तीसरी टांग है। पहिले मनुष्य के भी पूंछ का होना संभव था। घृणा हुई सभ्याता बढ़ गई। प्रकृति ने इसकी इच्छा की प्रबलता को देख कर पूंछ काटली और वह वामन अवतार के समय से दो टंगा हो गया। लेकिन वह पूंछ मनुष्य क`अब तक है। उसके कटने का निशान मिलता है। वह पीठ की हड्डी (मेरूदण्ड) के नीचे और सुषुम्ना नाड़ी से मिली जुली है। जहां यह है वहां ही मूलाधार चक्र है और जब मनुष्य की दोनों टांगे बेकाम हो जाती हैं तब यह इसी तीसरी टांग से चलने का काम लेता है और चूतड़ के बल फिसल कर और घिसट कर चलता है। लो, इस तीसरी टांग का भी तुमको पता दे दिया।

सातवां समुल्लास

क्यों? लगातार द्वापर के अवतार

गरूड़–'अभी त्रेता है। राम राज है। राम ने राक्षसों को मार कर रक्षा का प्रबंध किया और इस प्रबंध का नाम मर्यादा रक्खा। मर्यादा त्रेता से चलती है। सतयुग में मर्यादा नहीं रहती। त्रेता के पीछे द्वापर आयेगा। इसकी क्या दशा होगी? इसमें कितने अवतार होते हैं?

भुशण्डी–'देखो, केवल यह चित शक्ति का प्रभाव है जो तुमको भविष्य के विचार की ओर लिए जा रहा है।

द्वापर संस्कृत धातु द्वा (दो) और पर (पीछे) से बना है। त्रेता के पीछे जो द्वन्द पना, दोपना और दुचित पना आता है। उसकी उपेक्षा से उसका यह नाम रक्खा गया है। सतयुग में सत चार भाग सम्पूर्ण था। चित का उभार इतना नहीं था। त्रेता में स्वरक्षा के विचार के आने से सत के तीन भाग रह गये और एक भाग चित ने ले लिया। अवतार या अवतारों ने मर्यादा बांध कर उसकी पूर्ति की। अब जब द्वापर आ गया तो सत के दो भाग और हो ही भाग चित के हो गए। दोनों बराबर बराबर हो गए। द्वन्द पना विशेष आ गया। खींच तान का प्रारंभ हुआ। राक्षस पना तो है। अब रक्षा का भाव राम की मर्यादा से दब गया था। शान्ति आ गई थी। सत जीवन की ओर सबकी दृष्टि रहने लगी थी। अब वहां स्वार्थ की अधिकता हो गई। साथ ही मनुष्यों ने अपनी संसारी वासनाओं और आवश्यकताओं को बहुत बढ़ा लिया। जिनसे उन्हे महा

दुख होने लगा और नाना प्रकार की छेड़–छाड़, मार–धाड़, उधम, अत्याचार फैलेंगे। यह दशा अच्छी नही होगी। पृथ्वी दो लड़ाकों का दंगल बन जायेगी। मल्ल युद्ध बढ़ जाएगा। लोग मर्यादा भ्रष्ट और मर्यादा के भंग करने वाले बन जांयगे। इसकी रोक थाम के लिए दो अवतार होंगे। एक देवकी पुत्र कृष्ण का और दूसरा माया पुत्र गौतम बुद्ध सिद्धार्थ का।

कृष्ण प्रकट होकर समझायेंगे कि द्वन्द रोग की औषधि प्रेम है। परस्पर प्रेम को बढ़ा दो। प्रेम का जीवन जीने लगो और सत की त्रुटि की आप ही आप पूर्ति होगी। कृष्ण प्रेम की मूर्ति होंगे और जब यह सत की हानि की पूर्ति करके गुप्त हो जांयेगे और द्वन्द पना हाथ पांव बढ़ा कर विशेष हाथा पाई करने लगेगा और संसार दुखी होगा उस समय सिद्धार्थ गौतम बुद्ध प्रकट होकर सबको ज्ञान बतायेंगे। सत की दो टांगों की पूर्ति ज्ञान से करायेंगे। इस ज्ञान का नाम बुद्धि रखा जायगा, क्योंकि इस शिक्षा का संबंध बुद्धि ही से होगा और यह इस उपाय से संसार में शान्ति लायेंगे।

ऐ गरूड़! द्वापर युग का प्रभाव और परिणाम ऐसा होगा।

यह समय त्रेता का है। हम तुम दोनों त्रेता के पक्ष व पक्षी हैं। इसी से हमको संबंध है। द्वापर में और क्या क्या होगा इसका और विचार इस समय सुमेरू पर्वत पर निरर्थक है। तुमने पूछा मैंने जो समझा तुम्हें समझा दिया। भविष्य काल की लीला भविष्य काल में होगी। जो प्राणी उस युग में उत्पन्न होंगेवह उसे भोगेंगे और उपाय से काम लेंगे। हमारा धर्म इस राम राज के केवल मर्यादा पद्धति पर चलना और सत का जीवन मर्यादा की सहायता से प्राप्त कर लेना है।

त्रेता युग के राम मर्यादा पुरूषोत्तम हैं।
द्वापर युग के कृष्ण प्रेम पुरूषोत्तम होंगे।।
द्वापर युग के बुद्ध ज्ञान पुरूषोत्तम होंगे।
और कलियुग के कल्की भगवान नाम पुरूषोत्तम होंगे।

क्रमशः

सत्संग परम संत हजूर परम दयाल जी महाराज दूसरा सत्संग सार का सार

(तीसरा सत्संग हनमकुण्डा दि. 10.2.62 प्रातः)

मैं अभी दाता दयाल महर्षि के स्टेचू को मत्था टेकने गया। जब आंख बन्द की तो मेरे अन्द स्वामी जी की मूर्ति प्रगट हुई। जितनी देर वहां रहा वही मूर्ति मस्तिष्क में रही। दूसरे लोग या सत्संगी समझते होंगे कि स्वामी जी मेरे अन्दर आ गये। यह मूर्ति क्यों प्रगट हुई? यह जीवन में पहिली घटना है। 25–26 वर्ष बाद यह दृश्य देखा। बात यह है कि आज उनकी फोटो सामने रही और उनके शब्दों का पाठ होतर रहा। उनके शब्द पढ़ने से वह संस्कार मुझ में आया। जो हम पढ़ते सुनते हैं जिनके साथ संगत है उनके भाव और संस्कार अपने अंदर दर्शन देते हैं और इस प्रकार के ख्यालात लोगों के हृदय में आते रहते हैं। दूसरा कोई होता तो बात का बतंगड़ बना देता।

चूंकि यह रहस्य मुझे ज्ञात हो चुका है इसलिए जगत कल्याण हेतु मन के मण्डल का स्पष्ट वर्णन करने का विचार है।

मन का मण्डल–विचारों का प्रभाव

जिस प्रकार के संस्कार इस मन पर पड़े हैं वही फुरते है। इसलिए किसी निर्बन्ध पुरूष की बाणी पढ़ो, उसकी संगत करो, उसका संस्कार लो, ताकि उसके गुण तुम में आ जांय।

लेखक जैसा होगा अर्थात् जैसे उसके विचार होंगे वैसा ही प्रभाव पढ़ने वालों पर होगा। पुस्तकों और पत्रों के सम्पादन करते समय जैसा भाव सम्पादकों का होगा, वही प्रभाव दूसरों पर पड़ेगा। यदि पुस्तकों के लिखते समय तथा भेजते समय मलीनता है तो कभी आशा न करो कि प्रभाव अच्छा होगा। यह विज्ञान की फिलौसफी है। मैगनेटिज्म (चुम्बकीय शक्ति) साथ जाती है। जिस

भाव से रिश्तेदारों को चीज देते हो वह भाव साथ जाते हैं। जिस नीयत से बात करते हो वह फैलेगी। कई महात्माओं या सन्तों ने डेरा या धाम बनाने की नीयत से काम किया। वह बन गये। जिसने रूपये प्राप्त करने की नीयत से काम यिा रूपया मिल गया। मैं अपने से सवाल करता हूं कि फकीर! तू किस नीयत से काम करता है? किस नीयत से यहां आया है? किस नीयत से पुस्तके लिखता है? केवल इस भाव से कि जो अशान्त हैं, भ्रम में हैं उनको शान्ति मिले और उनके भ्रम व शंकाये दूर हो जांय। मगर देखता हूं कि शान्ति मिलती नहीं। इसका कारण क्या है? इसका मुख्य कारण है मन की चंचलता। जिनका जीवन विषय विकार का रहा है उनका मन चंचल रहता है। मेरा जीवन अपने सामने है। अपना तथा दूसरों का जीवन अध्ययन करने के बाद इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि बालिग (Maturity) होने से पहिले जिसका शारीरिक और मानसिक ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है उनको शान्ति प्रायः सुगमता से नहीं मिलती। मुझमें अशान्ति अधिक रही। दाता दयाल की मूर्ति प्रगट करने में 9 वर्ष लगे। मै। यह बाते अपना काला मुंह करके आपको कह रहा हूं ताकि तुम संभल जाओ।

कुछ दिनों पहिले की बात है कि दूसरे प्रान्त का व्यक्ति जो अपने को ब्रह्मचारी कहता था मेरे पास आया। कहने लगाा मैंने 'मनुष्य बनो' पत्रिका पढ़ी है। उससे ज्ञात हुआ कि आप में कुछ सचाई है। मैं बड़ा अशान्त हूं। स्कूल छोड़ा। एक साधु के पास गया। उसने आंखें जोर से दबाई। थोड़ा प्रकाश हुआ और कुछ न मिला। मेरा शब्द और प्रकाश भी न खुला। मैंने कहा आप बुरा न माननना। आप ब्रह्मचारी नहीं हैं। यदि सच सच कहोगे तो उपाय बता दूंगा। यदि रोगी डाक्टर से रोग की छिपाता है तो न तो डाक्टर इलाज कर सकता है न रोग जा सकता है।

इसलिए आप लोगों को भी कहता हूं कि गुरू के सामने छल कपट त्याग कर अपना कष्ट या दुख कह दो ताकि गुरू को तुम्हारी हालत के अध्ययन करने का अवसर मिले और वह तुम्हें ठीक राय दे सके।

फिर उस ब्रह्मचारी ने कहा कि जब मैं स्कूल में पढ़ता था तो मुझे खुजली हो गई थी। मुझे तेल की मालिश करने को कहा गया। मालिश करते समय हाथ लिंग पर जाता रहा। वहां मुझे आनन्द आता था और मैं गलती करता रहा। फिर मैंने उसे उचित राय दे दी और वह चला गया।

यदि देशवासी चाहते हैं कि भावी संतान कमजोर न हो, अशान्त न हो तो कहे जाता हूं कि बच्चों के ब्रह्मचर्य का ख्याल रखो। ऐसी दशा में जिनमा मानसिक ब्रह्मचर्य गिर जाता है वे चंचल हो जाते हैं। उनको शान्ति की दशा में लाने को समय लगता है।

मेरा मन चंचल था, अशान्त था मगर मैं आज्ञाकारी था, गुस्ताख नहीं था। जो आज्ञा दे दी गई उसका पालन किया। मुझे पिता जी के शब्द याद आते हैं। जब मैं नौकर हे गया था, 16 वर्ष की आयु थी। मैंने भाई को कहा कि मेरी स्त्री को ले आओ। पिता जी आये। कहा–बच्चा! देखो पका हुआ फल स्वाद देता है। यदि पेड़ पर न पके तो उसमें स्वाद नहीं आता। पिता जी तो चले गये मगर मैं उनकी बात न समझ सका। जवानी का जोश था, स्त्री और मां को बुला लिया। विषय विकार में फंसा और अशांत हो गया।

अधिक भक्तिभाव वाले कुछ लोग तो अज्ञान वश होते हैं जो सुनी सुनाई बातों पर चलते हैं और कुछ ब्रह्मचर्य की गिरावट से होते हैं। मैं नवयुवकों को भक्ति करते देखता हूं तो मेरा माथा ठिनक जाता है। इस संबंध में एक उदाहदण मुझे याद आता है।

फरीदकोट में एक आदमी अपने लड़के की बड़ी प्रशंसा करता था कि वह बड़ी भक्ति करता है। मकान के कमरे में मंदिर बनाया हुआ है। दो–दो घंटे मस्ती में झांझ बजाता है। मैंने कहा कि मुझे दुख है कि तुम्हारा लड़का बदचलन हो गया। उसके चरित्र को संभालो। उस व्यक्ति को मेरी बात बुरी लगी। कहने लगा क्या आपका दिमाग ठीक है। क्या आप अपनी बात का प्रमाण दे सकते हैं? मैंने कहा कि अपने घर में जाकर यह प्रसिद्ध कर दो कि फकरीचन्द योगीराज है। वहां जो मांगो मिल जाता है। उसने ऐसा ही किया। ढाई महिने बाद वह लड़का मुझे मिला। रोने लगा। कहा

कि मेरा प्रेम दूसरी जाति की लड़की से है मगर मां बाप का डर है, मैं उससे शादी नहीं कर सकता। कोई उपाय आप कर दीजिये। मैंने कहा तुम अभी पढ़ो। तुम्हारी शादी उसी से करा दूंगा। मैंने उसके बाप को बुलाया और कुल हाल कहा। वह बात सच निकली। ऐसी ऐसी घटनायें उनेकों मेरे सामने हैं। इसलिये मैं दर्दे दिल रख कर आपको बता रहां हूं कि अपने को संभलो। यह मेरी ड्यूटी है।

अशान्ति का मुख्य कारण जैसा मैंने अभी बताया मानसिक और शारीरिक व्यभिचार है। कुछ गिरावट तो मां बाप के संस्कारों के कारण होती है और कुछ मनुष्य की अपनी। इसमें मां बाप का अधिक दोष इसलिये है कि जैसे भाव व विचार को लेकर सन्तान की जाती है अथवा जैसे भाव विचार पैदा करते समय तथा गर्भ के समय पेट में रखेंगे वैसे ही प्रभाव बच्चे पर पड़ेगे। मेरा नाम 'फकीर' मेरे जन्म से दो वर्ष पहिले एक मस्त फकीर ने रखा हुआ था। यह मैं पहिले भी बता चुका हूं कि बारह वर्श तक मां बाप को कोई सन्तान नहीं हुई। दो लड़कियां मुझसे पहिले हुई थी वह मर गई। वहां निकट में एक मस्त फकीर था। पिता जी उसकी बहुत सेवा करते थे। उस फकरी ने मस्ती में आकर कह दिया कि लड़का होगा। उसका नाम फकीरचन्द रखना।

इन संस्कारों के प्रभाव का एक और उदाहरण मेरे सामने हैं जो पूर्णतया सिद्ध करता है कि मां बाप के संस्कारों का प्रभाव संतान पर पड़ता है। कई वर्ष हुये जब मैं देहली गया। मेरी इच्छा थी कि मैं अपना कोई उत्तराधिकारी नियत कर जाऊं। वहां मेरा एक प्रेमी शिष्य था। उस पर मुझे बड़ा घमण्ड था। समझता था कि वह मेरी बात अवश्य मानेगा। मैंने एक केला उठाया और उसकी स्त्री को दे दिया। कहा कि गर्भ होने पर संभोग न करना। समय पर बच्चा हुआ। मेरे पास चिट्ठी आई। मेरी खुशी की हद न रही। समझा मैदान मार लिया। वहां पर मेरे साले पं0 रिखीराम थे। वह अच्छे ज्योतिषी हैं। मैंने उनसे उसकी जन्म–पत्री बनाने को कहा। उन्होंने जन्म–पत्री बना दी। कहा इसका ग्रहयोग तो अच्छा है मगर

जब युवा होगा तो व्याभिचारी हो जायगा।

मैंने कहा ऐसा नहीं हो सकता। उत्तर दिया गया कि महारज! ज्योतिष तो ऐसा ही कहती है। अनुाव ने बताया कि मां बाप भेग करते रहे होंगे। जब उनसे पूछा गया तो उन्होंने एस बात को मान लिया।

इन अनुभवों ने सिद्ध किलया कि जिन भाव और विचारों से संतान पेदा की जायगी वही भाव और विचार संतान में होंगे। लोग शिकायत करते हैं कि लड़का कहना नहीं मानता। शिकायत किस बात की? जो तुमने किया वह भुगतना है। कर्म के फल के सिलसिले में दातादया का एक शब्द है–

कर्म का फल

कोई सुख दुख का नहीं दाता, तेरी ही भूल सब।
कर्म अपने करते हैं, अनुकूल और प्रतिकूल सब।।
कर्म की प्रधानता की क्या, नहीं तुझको समझ।
कर्म से आनन्द है और, कर्म ही से सूल सब।।
जो ठगेगा वह ठगा जायेगा, निस्संदेह आप।
प्रेमी जन ही पाते हैं, और प्रेम के बहुमूल सब।।
अपनी करनी आप भरनी, पड़ती है संसार में।
अपने घर की आप उठाया, करते ही हैं चूल सब।।
किस भरम में तूल पड़ा, औरों की बातें छोड़ दे।
काम में लग अपने करले, कर्म निज अनुकूल सब।।
राधास्वामी नाम भज, झगड़ों से बचकर रह सदा।
जो नहीं समझा तो, पढ़ना लिखना धूल सब।।

यह शब्द मेरे नाम है। इस शब्द में कर्म की प्रधानता पर प्रकाश डाला गया है। कर्म क्या है? हमारे भाव, विचार, संकल्प हमारे कर्म हैं। हमको शिकायत हे कि सन्तान अच्छी नहीं तो फिर जिम्मदार कौन?

क्रमशः

मानवता धर्म
परम सन्त हुजूर श्री मानव दयाल जी महाराज

(डा0 ईश्वर चन्द्र शर्मा) **गतांक से आगे...**

मानव की श्रेष्ठता सत् सनातन धर्म में और उसकी अन्तिम कड़ी राधास्वामी मत एवं सन्तमत में निर्पेक्ष रूप से स्वीकार की गई है। यही गुरूमत, जो वैदिक काल से आरम्भ होकर आज तक मानव जाति का मार्ग दर्शन करता चला आ रहा है, परमतत्व के उसी अवतार को श्रेष्ठतम मानता है, जो नर के रूप में, सद्गुरू बनकर जगत् में प्रगट होता है। तुलसी दास जी ने बहुत ही सुंदर ढंग से इस विचार को नीचे दिये गये दोहे में अभिव्यक्त किया है–

बन्दहों गुरूपद कंज कृपा सिन्धु नर रूप हरि।
महामोह तम पुन्ज जासु वचन रविकर निकर।।

अर्थात् "मैं उस गुरू (परमतत्व) के कमल रूपी चरणों को नमस्कार करता हूं, जो नारायण होते हुए भी नर के रूप में कृपा के सागर बनकर प्रगट हुए हैं और जिनकी वाणी से जीवों का महामोह रूपी अंधकार उस घने बादल की भांति नष्ट–भ्रष्ट हो जाता है जिस पर सूर्य रूपी प्रकाश पड़ता है।"

वास्तव में, इस पद्य में मानवता धर्म का रहस्य छुपा हुआ हैं। युग युगान्तर से अवतार होते चले आ रहे हैं। हर युग में जगत् की परिस्थितियों के अनुसार अवतार हुए। मच्छ, कच्छ, वराह, नरसिंह अवतार पूर्ण नहीं थे। वामन अवतार भी पूर्ण मानव का आदर्श नहीं था। परशुराम ब्रह्मचर्य के अवतार होने के कारण और अविवाहित होने के कारण पूर्ण अवतार नहीं कहे जा सकते। यद्यपि परशुराम, राम, कृष्ण और बुद्ध क्रमशः सनातन धर्म के चार आश्रम धर्मों के अनुसार ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास के प्रतीक थे फिर भी इनमें से भगवान कृष्ण को इसलिए पूर्णेश्वर माना गया है, क्योंकि उन्होंने लोक और परलोक दोनों को साधने का उपदेश दिया और बताया कि ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों के समन्वय से स्थितप्रज्ञता प्राप्त की जा सकती है और

साधारण मनुष्य जीते जी ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त कर सकता है। भगवद्गीता की मानवता निसंदेह वेदों और उपनिषदों पर आधारित पूरी मानवता है। इसमें बुद्धियोग पूर्णात्मक योग है और वास्तव में यही बुद्धियोग आगे चलकर मध्यकाल में कबीर साहब के प्रगट होने के बाद, सुरत–शब्द–योग के रूप में मानव कल्याण के लिए जनसाधारण को उपलब्ध हुआ। भगवान कृष्ण ने स्वयं भगवद्गीता के चौथे अध्याय में अर्जुन को कहा है कि उन्होंने यह रहस्यमय योग आदि में सूर्य को दिया था। सूर्य ने मनु को दिया, मनु ने इक्ष्वाकु को दिया और आगे चलकर राजऋषियों को यही योग उपलब्ध हुआ। किन्तु बहुत समय गुजर जाने पर यह सहज योग लुप्त हो गया। इसी वार्तालाप में भगवान ने अर्जुन को यह भी कहा कि वही योग अपनी दया के कारण उसे फिर से बतलाया। न ही केवल इतना बल्कि उसी अध्याय में यह भी कहा गया है कि हर युग में मनुष्य की पूर्णता को पनपाने वाले इस रहस्यमय योग को सिखाने के लिए परमतत्व स्वयं अवतार लेता है और लेता रहेगा।

क्योंकि सभी योग मनुष्य को परमतत्व से मिला देते हैं, उसके सीमित व्यक्तित्व को असीम बना देते हैं और उसकी पूर्णता की क्षमता को वास्तविकता में बदल देते हैं, इसलिए उन सबको मानवता योग कहा जा सकता है। इसी दृष्टि से हम न ही केवल हिन्दू धर्म या सनातन धर्म को मानववाद कहते हैं, बल्कि यहूदी धर्म, ईसाई धर्म, और इस्लाम धर्म भी पूर्ण रूप से मानववादी हैं। हर एक धर्म मानव को ईश्वर का बेटा या उससे बिछुडा हुआ अंश मानता है और इस बात का दावा करता है कि वह इस बिछुड़े हुए मनुष्य को अपने पिता से या मालिक से मिला सकता है और उसे इस नश्वर जगत् से अविनाशी धाम पर पहुंचा सकता है। वास्तव में सभी धर्मों के प्रवृत्तक मानव थे, उन्होंने समन्वित जीवन व्यतीत करके अपनी पूर्णता को वास्तविकता में बदल कर, न ही केवल जन साधारण के लिए पूर्णात्मक जीवन का नमूना प्रस्तुत किया, बल्कि इस बात पर भी जोर दिया कि इस पूर्णता के प्राप्त करने का एकमात्र साधन निर्पेक्ष प्रेम है। मालिक ने इस जगत् को केवल प्रेम के अनुभव करने के लिए ही रचा और सभी आत्माएं प्रेम का अनुभव करने के लिए ही अनन्त और अविनाशी धाम से, इस नाशवान

जगत् में अपने प्रियतम से बिछुड़ कर ठोस शरीर में प्रेम का अनुभव करने के लिए आयीं। व्यक्ति को अपने प्रेमी से बिछुड़ कर ही उसको मिलने की तड़फ होती है। जब तक वह अपने प्रेमी से पुनः मिल नहीं लेता, तब तक उसे अशान्ति और दुख का अनुभव होता है। मानव की इस तड़फ को देखकर मालिक स्वयं मनुष्य का चोला धारण करके दुखी जीवों को प्रेम के मार्ग पर लगाने के लिए सन्तों का अवतार धारण करके आता है।

प्राचीन काल में ऋषियों ने मानव के सर्वांङ्गीन विकास के लिए सौ वर्षीय जीवन को चार आश्रमों में विभक्त किया था, ताकि वह ब्रह्मचर्य आश्रम में गुरू से प्रेम करे, गृहस्थ आश्रम में परिवार से प्रेम करे, वानप्रस्थ आश्रम में, मानव मात्र से प्रेम करे और सन्यास आश्रम में सर्वाधार परमतत्व परमात्मा से प्रेम करे और अन्त में स्वयं उनमें विलीन होकर परमतत्व ही बन जाये।

यही शिक्षा जो वेदों, उपनिषदों में दी गयी है वही सन्तमत, राधास्वामीमत, एवं मानवता धर्म की शिक्षा है। जीवन को सफल बनाने और पूर्णता प्राप्त करने के लिए सन्तमत ने भी चार दर्जे बताये हैं जो इस प्रकार हैं–

एक जन्म गुरू भक्ति कर, जन्म दूसरे नाम।
जन्म तीसरे मुक्तिपद, चौथे में निजधाम।।

इसका भावार्थ ये है कि कुछ समय के लिए मनुष्य को सत्पुरूष का संग करके उसकी भक्ति और सेवा करनी चाहिए, ताकि सत्पुरूष दया से द्रवित होकर उसे नामदान की दीक्षा दे और उसे भक्ति मार्ग का सहज रास्ता बताये। उसके बाद कुछ समय उस नाम का सुमिरन किया जाये, जो सद्गुरू ने दिया है अर्थात् जो रास्ता उसने बताया है, उस पर लगातार चले और हर जगह पर उसे गुरू ही गुरू दिखाई देने लगे। इस प्रकार नाम को साधने से व्यक्ति को वास्तव में सारा जगत ब्रह्ममय या ईश्वरमय दिखाई देने लगता है। यही ब्रह्म दृष्टि जीवनमुक्ति कहलाती है। जीवनमुक्त व्यक्ति हर वस्तु में और हर घटना में मालिक की झलक देखता है वह अपना आपा खोकर गुरूमुख ही जाता है और इस सच्चाई को अनुभव करता है कि–

जब मैं था तब तू नहीं, जब तू है मैं नाहिं।
प्रेम गली अति सांकरी, वा में दो न समाहि।।

यह तीसरी अवस्था प्रेम की पराकाष्ठा है। इस अवस्था पर पहुंचकर व्यक्ति द्वन्दात्मक जगत् में रहते हुए भी सुख–दुख, लाभ–हानि, जय–पराजय का अनुभव करते हुए भी घबराता नहीं है। किन्तु यह अवस्था भी अन्तिम अवस्था नहीं है। चौथी अवस्था को विदेह मुक्ति कहा जाता है। इसमें पहुंचकर न गुरू रहता है न शिष्य रहता है न भक्त रहता है, न भगवान। भक्त को भक्ति करने की भी आवश्यकता नहीं रहती। किसी प्रकार की साधना की भी जरूरत नहीं रहती और ऐसा विदेहमुक्त शरीर की चेतना से, मन की चेतनता से और आत्मा की चेतना से ऊपर उठ जाता है। दूसरे शब्दों में वह सत चित और आनन्द के अनुभवों से ऊपर उठकर एक ऐसी हालत में पहुंच जाता है, जिसकी व्याख्या नहीं की जा सकती, इस अवस्था में निश्चितता, स्थिरता और अविनाशी भाव का अनुभव होता है। इसमें भक्त भगवान का सुमिरन नहीं करता, बल्कि भगवान स्वयं भक्त का सुमिरन करता है। इसी भाव को नीचे दिए गये पद्य में अभिव्यक्त किया गया है–

माला फेरूं न हर भजूं, मुख से कहूं न राम।
मेरा राम मुझको भजे, तब पाऊँ विश्राम।।

इसका भावार्थ यह है कि जब भक्त हर समय भगवान को याद करते–करते अपने आपको भूल जाता है और जब उसे शरीर, मन और आत्मा का भी आभास नहीं रहता, उस समय वह अपने आराध्य में इतना विलीन हो जाता है, उसमें इतना खो जाता है कि उसे आराध्य का ध्यान भी नहीं रहता। जब वह स्वयं अपने इष्ट में समाविष्ट हो गया, अर्थात् जब उसका इष्ट उसी में समाविष्ट हो गया, दोनों मिलकर एक हो गए, तो वह किसके नाम की माला फेरे, किसका सुमिरन, ध्यान और भजन करे? इसतिए इस उच्चतम अवस्था पर पहुंचकर सभी साधक, सभी सन्त चुप हो जाते हैं। दाता दयाल जी महाराज ने इसी अनुभव की व्याख्या करते हुए कहा है–

बूंद पानी में मिला, दरिया बना क्या जुस्तजू।
जात में जब मिल गया, फिर वह करे क्यों गुफ्तगू।।

यहां पर बातचीत करने का सवाल ही नहीं उठता। जो वास्तव में ब्रह्मलीन ब्रह्ममय हो जाता है, जो सभी उपधियों से मुक्त होकर अपने निज रूप में ठहर जाता है, उसे न बोलने की आवश्यकता हे न और कुछ करने की। इसलिए प्राचीन ऋषियों ने इस अवस्था को अनिर्वचनीय अवस्था कहा है। इसमें कोई शक नहीं कि प्राचीन काल के ऋषियों ने जीवन मुक्ति और विदेह मुक्ति का अनुभव किया और अपने शिष्यों को भी उसका अनुभव कराया, किन्तु इस अन्तिम अवस्था तक पहुंचने के लिए ऋषियों ने हजारों वर्षों तक अभ्यास किया। इस अवस्था तक पहुंचने की अनेक विधियां अपनाई गयी और अनेक प्रकार के योगों का प्रयोग किया गया। राजयोग विशेषकर योगी को इसी अवस्था पर पहुंचाने के लिए प्रतिपादित किया गया था–किन्तु यह योग बहुत ही जटिल और कठिन है। इसमें अनेक नियमों और यमों का पालन करना पड़ता है। आसन प्राणायाम आदि का भी अनुसरण करना पड़ता है।

प्राचीन काल में तो राजयोग का पालन करना सम्भव था, किन्तु कलियुग के अन्दर अनेक कठिनाइयों और समस्याओं के कारण साधारण जीव राजयोग का पालन नहीं कर सकते। इसलिए कलियुग के करोड़ों जीवों को सहज में इसी राधास्वामी अवस्था एवं निजधाम की अवस्था पर पहुंचाने के लिए सर्वाधार परततत्व ने सन्त अवतार धारण किया और सुरत–शब्द–योग की सहज विधि को जन साधारण तक पहुंचाने की कोशिश की। यह रीति इतनी सरल और सहज है, जिसे हर एक व्यक्ति चाहे वह बालक हो, युवा हो, बृद्ध हो, चाहे वह किसी भी जाति या धर्म से सम्बन्ध क्यों न रखता हो, सहज में योग की उच्चतम अवस्था को पा सकता है। इसमें केवल सद्गुरू की देखरेख में अपने ध्यान को बाहर से हटाकर अन्तरमुखी करना होता है।

कबीर साहब से लेकर समकालीन राधास्वामी मत के सन्तों ने उस शब्दयोग को प्रकट किया, उसका अनुभव किया और प्रचार किया जो पिछले युगों में जन साधारण को उपलब्ध नहीं था। इस जगत में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश पांच तत्वों का प्रसार है और इनमें से आकाश ही सबसे अधिक सूक्ष्म और व्यापक है। पृथ्वी तत्व का गुण गन्ध, जल का गुण रस, वायु का गुण स्पर्श और आकाश का गुण शब्द

है। जिस प्रकार आकाश अपने आप में सभी चार तत्वों को गर्भ में लिए हुए है, उसी प्रकार शब्द में भी बाकी चार तत्वों के गुण निहित रहते हैं। आकाश से ही प्रकाश पैदा होता है। शब्द से ही ज्योति पैदा होती है। यही पांच तत्व सूक्ष्म रूप से मानसिक जगत् को निर्मित करते हैं। यदि स्थूल शब्द को अन्तर में, मानसिक जगत् में पकड़ लिया जाए तो मनुष्य की सुरत ब्रह्माण्ड को पार पराब्रह्माण्ड से गुजरती हुई, स्थूल, सूक्ष्म और आत्मिक जगत् के सर्वाधार अलख, अगम, अनामी पुरूष तक पहुंच सकती है। अन्तर में इस शब्द को पकड़ने के लिए सद्गुरू शिष्य को ऐसे ध्यानात्मक मन्त्र का नाम देता है, जिसका सुमिरन करते हुए और उसके साथ आंखों को बन्द करके भौवों के बीच तीसरे नेत्र पर ध्यान लागाकर प्रकाश का अनुभव करते हुए साधक अन्तर के अनहद शब्द को सुनता है।

इस शब्द को सुनते–सुनते वह अन्त में उस पराशब्द में विलीन हो जाता है, जिसमें वह शरीर, मन, आत्मा के दर्जों से ऊपर उठ जाता है और अपने अविनाशी तत्व को एवं निजरूप को अनुभूत कर लेता है। सन्तों ने इस शब्द के चार दर्जे बताए हैं जिन्हें 1. बैखड़ी, 2. मध्यमा, 3. पश्यिन्ती और 4. पराशब्द कहा जाता है। बैखड़ी शब्द ठोस होता है उसे शारीरिक कान से सुना जाता है। मध्यमा शब्द सूक्ष्म होता है, उसे केवल अन्तर में मानसिक रूप से अनुभूत किया जाता है। पश्यिंती शब्द का अनुभव प्रकाशमय कारण शरीर आत्मा द्वारा किया जाता है, जिसमें प्रकाश और शब्द दोनों उपस्थित होते हैं। पराशब्द जो प्रकाश और शब्द से परे सूक्ष्मतम तत्व है केवल विशुद्ध आत्मा एवं सुरत के द्वारा अनुभूत किया जाता है। सन्त सद्गुरू के मार्गदर्शन में व्यक्ति इस पराशब्द से भी ऊपर उठकर, अपनी उस उच्चमत विशुद्ध निज अवस्था, साक्षी भाव को प्राप्त हो जाता है, जिसके अनुभव से वह स्वयं परमतत्व सर्वाधार और स्वामीपन का वास्तविक अनुभव कर लेता है। वह इस पूर्णता को समाधि की अवस्था में पाने के बाद जागृत अवस्था में भी समता और विदेहमुक्ति की हालत में रहता है। यही पूर्णता ही मानव की पराकाष्ठा है। इसलिए मानवता धर्म मानव को सहज में उच्चतम शिखर पर पहुंचा देता है।

शब्द योग को अपनाने और उसके द्वारा पूर्णता प्राप्त करने के तीन सोपान हैं। 1. सत्संग 2. सद्गुरू 3. सतनाम। संतमत की सबसे बड़ी देन सत्संग है जिसे उपनिषद काल में श्रवण कहा जाता था। प्राचीन समय के ऋषि अपने अनुभव के आधार पर श्रवण के द्वारा शिष्यों को सत्संग देकर परमतत्व आत्मा और जगत् के बारे में सच्चा ज्ञान देते थे। संतमत में सत्संग की विशेष महिमा है। जबकि प्राचीन काल में राजयोग, हठयोग, प्राणायाम आदि कठिन विधियों पर चलना पड़ता था, शब्दयोग की सहज शैली में सद्गुरू के सत्संगमात्र से, उसके पास बैठने मात्र से और सुनने मात्र से सभी विधियां और सिद्धियां अपने आप ही प्राप्त हो जाती हें। तुलसीदास जी ने इस सत्यता का इस प्रकार वर्णन किया है–

सतसंगत मुदमंगल मूला।
सोई फल सिद्धि सब साधन फूला।।

इसका भावार्थ यह है कि सत्संग एक प्रकार का वृक्ष है। उस वृक्ष की जड़ मुदिता और मंगल है। अर्थात् सद्गुरू के सत्संग में आने से मनुष्य को सहज में ही प्रसन्नता मिलती है और उसके घर में सभी मगलकार्य घटित होते हैं। इस सत्संग रूपी वृक्ष का फल यह है कि सत्संगी हर प्रकार की सिद्धि प्राप्त कर लेता है और उसकी सभी मनोकामनाएं पूरी हो जाती हैं। यहां पर यह बताना आवश्यक है कि ये सिद्धि सत्संगी के अपने विश्वास के कारण होती हैं। यदि वह नम्रता और विश्वास से सद्गुरू के सत्संग की ओर ध्यान देता है तो उसको उसकी आवश्यकता के समय गुरू का रूप प्रकट होकर हर प्रकार की सहायता देता है, किन्तु सच्चा सद्गुरू सत्संगी को यह रहस्य बता देता है कि इस सिद्धि की प्राप्ति का कारण सदृगुरू की कोई विशेषता नहीं है, बल्कि सत्संगी के अपने मन की प्रबल इच्छा शक्ति है। हां यदि सद्गुरू सत्संगी को यह सच्चाई बता देता है और उसको धोखा नहीं देता, तो सद्गुरू की सद्भावना सत्संगी की इस सिद्धि को शिव संकल्प के कारण और भी बढ़ा देती है।

सत्संग रूपी वृक्ष के फूल हर प्रकार के कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, राजयोग, कुण्डलिनी योग इत्यादि विधियां हैं, जो सहज में ही

सत्संगी को उपलब्ध हो जाती हैं। उसे इन योगों की क्रियाओं को करना ही नहीं पड़ता, क्योंकि वह सहज में शब्दयोग के अभ्यास से उस पराकाष्ठा पर पहुंच जाता है जिसकी उपलब्धियों के लिए इन सभी योगो को अपनाया जाता है। यह सत्संग की महिमा है।

शब्दयोग का दूसरा सोपान सद्गुरू है। ऊपर बताया गया है कि सत्संग सद्गुरू का ही होना चाहिए। उपनिषद् काल में इस सोपान को मनन कहा जाता था। सद्गुरू के अनुभव पर आधारित सत्संग सुनने के बाद शिष्य अपनी शंका निवारण के लिए प्रश्न किया करते थे और ऋषि लगातार शंका समाधान करते रहते थे। शब्दयोग में भी सत्संग सें तभी लाभ हो सकता है, जब सत्संगी की सभी शंकाओं को दूर कर दिया जाये। इसलिए शब्द योग में सफलता प्राप्त करने के लिए जीवित सद्गुरू का सत्संग सुनना आवश्यक है। यदि मीराबाई पत्थर की मूर्ति को इष्ट मानकर अविनाशी परमतत्व में विलीन हो सकती है, तो क्या सत्संगी जीते जागते सद्गुरू को मालिके कुल मानकर और उसके सत्संग में शंका समाधान होने के बाद गुरू की आज्ञा के अनुसार चलकर तीसरे सोपान सतनाम यानि कि शब्द योग में ध्वनात्मक मन्त्र का सुमिरन करते हुए अपने सद्गुरू की भांति पूर्णता को प्राप्त क्यों नहीं हो सकता है। जैसे कि ऊपर बताया गया है कि सतनाम या नामदान का मतलब सद्गुरू के मार्गदर्शन में शब्द योग का आभ्यास करके अनुभव करना है, जिसे सद्गुरू ने सत्संग में बताया हो। उपनिषद् काल में इसी सतनाम के तीसरे सोपान को निद्धिध्यासन कहा जाता था।

इस विवेचन से यह साबित होता है कि परमतत्व के अवतार संतों ने कठिन मार्ग को सरल बना दिया और सहज में ही मनुष्य को मानवता की पराकाष्ठा पर पहुंचाने का प्रयास किया है। इससे न पूजापाठ की आवश्यकता है, न बाहरी धर्म–कर्म की, न किताबी ज्ञान की और न किसी प्रकार की शारीरिक व्यायाम की। यहां केवल शरणगत होने की आवश्यकता है। सत्संग की रीति से सब प्रकार के क्लेश सहज में दूर हो जाते हैं और मनुष्य की पूर्णता प्राप्त करने के रास्ते में रूकावट नहीं डालते।

मानवता धर्म अर्थात् शब्दयोग की इस विशेषता को बताते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है–

सब ही सुलभ, सब दिन सब देसा।
सेवत सादर समन क्लेशा।।

यह सत्संग, सद्गुरू और सतनाम की विधि जो वास्तव में मानवता धर्म की विधि है, हर एक व्यक्ति को समान रूप से उपलब्ध है। इसमें मानव को अधिकारी बनने के लिए विशेष जाति, विशेष धर्म और विशेष सम्प्रदाय से संबंध रखने की आवश्यकता नहीं है। सत्संग रूपी मानवता धर्म की यह रीति और उसका आयोजन हर प्रकार की तिथि,वार या उत्सव आादि की सीमाओं से भी मुक्त है। लोग सत्यनारायण का व्रत पूर्णमासी को रखते हैं और अन्य देवी देवताओं को विशेष समय पर, विशेष स्थान आदि पर पूजते हैं किन्तु सत्संग के लिए किसी ऐसी विशेषता या शर्त की जरूरत नहीं है। सत्संग हर दिन, हर समय और हर स्थान पर हो सकता है। शर्त केवल इतनी है कि इस सत्संग को सुनने वाला व्यक्ति आदर और सत्कार के साथ अपने अहंकार को मिटाकर सद्गुरू के चरणों में बैठे। ऐसा करने से उसके सभी क्लेश, राग, द्वेष, अविद्या, अस्मिता और मृत्यु का भय आदि दूर हो जाते हैं।

दाता दयाल जी महाराज ने और परमदयाल जी महाराज ने इस व्यापक शब्द योग एवं राधास्वामी विधि को, जो मनुष्य को राधास्वामी की पूर्ण अवस्था पर पहुंचा देती है, मानवता धर्म कहा है। यहां पर मानवता शब्द का अर्थ व्यापक है। यदि उसे मानवता के स्थान पर 'पूर्णता' कह दिया जाये, तो इनकी असलियत सहज में समझ आ जायेगी। इसी मानवता का प्रचार करने के लिए ही संतमत के व्यास महर्षि शिवब्रत लाल जी ने सभी धर्मों की व्याख्या करते हुए चार हजार के लगभग पुस्तकें लिखीं। उन्होंने इसी मानवता धर्म को व्यावहारिक रूप में अपने परम शिष्य परमसंत परम दयाल पण्डित फकीरचन्द जी महाराज को पूर्णता का अनुभव कराकर आज्ञा दी कि वह इस सच्चाई का अनुभव करने के बाद अन्ध विश्वास पर आधारित परस्पर विरोधी ध र्मों की विभिन्नता को दूर करके जन साधारण तक पहुंचाकर दुखी जीवों को निजधाम पहुंचाने के लिए सत्संग कराया करें।

परमदयाल जी महाराज ने 95 वर्ष की आयु तक इस सच्चाई का अनुभव किया और उन्होंने 70 वर्ष लगातार जन साधारण को सच्चा और सीधा मार्ग दिखाया जिसके फलस्वरूप लाखों व्यक्ति अन्धविश्वास को त्याग कर मानवता धर्म को अपना रहे हैं। इसी दृष्टि से उन्होंने होशियार पुर पंजाब में मानवता मंदिर स्थापित किया और अपने शरीर त्यागने से पहले मुझे आदेश दिया कि मैं इसी सहज सच्चे और सीधे सादे मानवता धर्म का वास्तविक रूप अपने अनुभव के आधार पर सत्संगों, लेखों और पुस्तकों द्वारा प्रस्तुत करूं। 00000

नई पीडी की नई उमंग

मत जीओ सिर्फ अपनी खुषी के लिए।।
कोई सपना बुनो जिंदगी के लिए
कोई मकसद चुनो जिन्दगी के लिए
पोंछ लो दीन दुखियों के आंसू अगर
कुछ नहीं चाहिए बंदगी के लिए। मत जीओ...
सोने चांदी की थाली जरूरी नहीं
दिल का दीपक बहुत है आरती के लिए
ऊब जायें ज्यादा खुषी से ना हम
गम जरूरी है खुष जिंदगी के लिए। मत जीओ...
सारी दुनियां को जब हमने अपना लिया
कौन बाकी रहा दुष्मनी के लिए
तुम हवा को पकड़ने की जिद छोड़ दो
वक्त रूकता नहीं किसी के लिए। मत जीओ...
पतझड़ों में वो दिल किससे बहलाएगी
कुछ तो रहने दो कांटे कली के लिए
सब गलत फहमियां दूर हो जांयगी
हंस के मिलोगे गले दो घड़ी के लिए।
मत जिओ सिर्फ अपनी खुशी के लिए।।

प्रस्तुतकर्ता–कुमारी साक्षी चितारा
सुपुत्री श्रीमति एवं श्री राधाकृष्णजिन्द (हरियाणा)

हिदायत नामा–जगत कल्याण

शब्दानन्द जी महाराज

श्री भगवानुवाच

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।

अर्थात्– हे भरत! जब–जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब–तब ही मैं साकार स्वरूप में प्रगट होता हूं।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।

अर्थात्– साुधु पुरूषों का उद्धार करने के लिये, और धर्म की भली प्रकार सथापना करने के लिये मैं युग–युग में प्रगट हुआ करता हूं।

अस्तु, वर्तमान् धर्म भ्रष्ट जगत की अपेक्षानुसार युग पुरूष जगत गुरू परम दयाल फकीर बाबा का अवतार हुआ। यहां विशेष रूप से समझने की बात यह है कि भगवान श्री कृष्ण ने द्वापर में अवतार लेकर, युग की अपेक्षानुसार महाभारत का युद्ध कराया। भगवान श्री कृष्ण काल के अवतार थे।

कालोऽस्मि लोकक्ष्यकृत्प्रवृद्धौ
लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृतः।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवसथिताः प्रत्यनीकेषु योधाः।।

भगवान बोले– मैं लोकों का नाश करने वाला बढ़ा हुआ महाकाल हूं। इस समण इन लोकों को नष्ट करने के लिये प्रवृत्त हुआ हूं। इसलिये जो प्रतिपक्षों की सेना में स्थित योद्धागण हैं, वे सब तेरे बिना भी, अर्थात् तेरे युद्ध न करने पर भी सब नाश हो जायेंगे।

भगवान श्री कृष्ण ने शस्त्रास्त्र का सहारा लेकर महाभारत का घनघोर विनाशकारी युद्ध कराया। किन्तु जगतम गुरू फकीर बाबा साक्षात् दयाल पुरूष के अवतार थे, जिन्होंने कलियुग में प्रगट हो कर, सत्संग तथा 'नाम' के द्वारा जगत–कल्याण का युग–कर्म सम्पन्न किया।

जगत की पुकार–फकीर बाबा का अवतार

वर्तमान संत्रस्त मानव–विश्व के अंतर्तम की पुकार और व्रबल मांग की प्राकृतिक पूर्ति के रूप में, इस धरती पर जगत–गुरू परम दयाल महाराज फकीर बाबा का अवतार हुआ। उन्होंने अपनी आतरिक दिव्य–दृष्टि से विश्व पर मंडराती विनाशकारी त्रासदी का पूर्वाभास कर विश्व मानव को अग्रिम ेतावनी देते हुए भविष्यवाणी की थी कि आसन्न विनाशकारी विभीषिका को रोका या टाला नहीं जा सकता, क्योंकि यह विश्व मानव का अपना ही प्रारब्ध कर्म–फल है।

परम दयाल फकीर बाबा ने स्पष्ट शब्दों में विश्व मानव को चेतावनी दी थी कि आसन्न विनाशकारी विभीषिका से बचाव का मात्र एक ही रातस्ता हैः–

'मानवता'–'इन्सानियत'–(Humanity)

यदि विश्व–मानव 'मानव–धर्म' को अंगीकार कर लेगा तो प्रकृति उसकी रखा करेगी, अन्याीा विनाश अवश्यम्भावी है।

'धार्म' बाहर से आने वाली कोई वस्तु नहीं है। प्रत्येक तत्व, योनि का धर्म उसके अंग–संग होता है। जल का धर्म है 'शीतलता', अग्नि का धम है 'ज्वलंतता', लवण का धर्म हे 'लावण्य', शक्कर का धर्म हे 'मिठास', अमृत का घर्म है 'अमरत्व', विष का धर्म है 'मृत्यु', देवता का धर्म हे 'देवत्व', दानव का धर्म है 'दानवत्य'। ठीक इसी प्रकार मानव का धर्म है 'मानवता'। धर्म के विनाश के साथ ही तत्व या योनि का भी विनाश हो जाता हे। मानवता धर्म के विनाश के साथ ही मानव का ीाी विनाश हो जाता है।

शब्द –गुरू की महिमा

गुरू गम की महिमा जान गया।। टेक।।
क्या था कौन था कैसा था वह, यह तो अकथ कहानी।
जब तक अपना मुख नहीं खोलूं, कोई न समझे ज्ञानी।।1
गुप्त न प्रगट न प्रगट गुप्त था, गुप्त प्रगट में व्यापा।
एक नहीं न अनेक रूप था, अपने आप में आपा।।2
शब्द नहीं न अशब्द की मूरत, निराकार साकारा।
अगुन सगुन व्यापक अव्यापक, दोनों ही से न्यारा।।3

मौज हुई धारा बन फूटी, सिंधु लगा लहराने।
प्रगट रूप रचना लगी होने, सिंधु बुंद के बहाने।।4
सत बन तपा ब्रह्म हो निकला, तीन अवस्ता ठानी।
हिरण्यगर्भ और अंतरयामी, और विराट महानी।।5
तीन दशा यह काल रूप की, बुंद एक सोई मानो।
जब लग बुंद की परख न होवे, सिंधु भेद नहिं जानो।।6
ब्रह्म बढ़ा फैला और सोचा, रच लिया सकल पसारा।
यह ब्रह्माण्ड ब्रह्म का अण्डा, बिरला समझे सारा।।7
पहले एक अनेक बना, फिर एक अनेक प्रकारा।
एक–अनेक की लीला अद्भुत, कहन संनन से न्यारा।।8
ब्रह्म से जीव जंतु प्रगटाने, सुरत सहारा लीना।
जीव ब्रह्म से यहि विधि निकले, तीन रूप चित दीना।।9
तेजस विश्व प्रज्ञ दशा हुई, जाग्रत स्वप्न सुशुप्ति।
जो है जीव ब्रह्म वैसा ही, बिरला समझे युक्ति।।10
बुद सिंधु से न्यारा हो गया, दुख सुख जाल बंधाना।
कर्म ज्ञान की उलझन में फंस, अपना भेद न जाना।।11
यह गति देख सिंधु दया उमड़ी, लहर रूप हो आई।
सतगुरू परम दयाल सुखदाई, प्रेम भाव समुदाई।।12
गुरू का भेष कृपालु दयाला, निराधार जगदाधारा।
हम जैसा बन जग में आया, धार संत अवतारा।।13
सत संगत के वचन सुनाकर, जीव लिये अपनाई।
भेद बताकर मर्म जताकर, सत के पंथ चलाई।।14
शब्द जहाज बिठा कर सबको, भव के पार लगाया।
जीव निबल को बल पौरूष दे, धुरपद ले पंहुचाया।।15
सोई आदर्श इष्ट है सोई, धुर पद सत पद वासी।
अगुन सगुन साकार अकारा, चेतन घन सुख रासी।।16
राधास्वामी परम दयाला, महिमा धन्य तुम्हारी।
तुम्हरी दया जीव बहु तर गए, चरन शरन बलिहारी।।17

क्रमशः.....

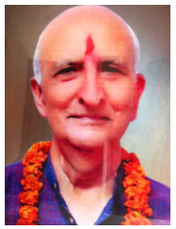

सत्संग परम संत हुजूर पुष्कर दयाल जी महाराज

प्रेम क्या है?

प्रेम व्यापार नहीं है और न कोई व्यवसाय का कोई अनुबन्ध है। प्रेम तो ऐसी चीज है जो बिना कीमत और बिना शर्त खुशी से परोसी जाती है। प्रेम में इनकार नहीं इकरार होता है, प्रेम में बन्धन नहीं प्रेम बन्धन मुक्त होता है, प्रेम में अधिकार नहीं समर्पण होता है, प्रेम में लेने की इच्छा नहीं देने की अभिलाषा होती है, प्रेम किया नहीं जाता हो जाता है, प्रेम सांसारिक वस्तु नहीं दैवीय सम्पदा है, प्रेम प्रेम है इसके सिवाय कुछ नहीं, प्रेम क्रिया या कर्म नहीं प्रेम विशुद्ध भावना है, प्रेम करने वाला अपना सब कुछ अपने प्रीतम को सौंप कर उसी का रूप हो जाता है, प्रेम में द्वैत और अद्वैत नहीं एकत्व होता है, प्रेम करने वाला कंगाल नहीं धनी होता है, प्रेम ही ईश्वर और ईश्वर ही प्रेम होता है। यदि आपको कोई सच्चा प्रेमी मिल जाए तो उसके चरणों की धूल एक बार अपने माथे पर जरूर लगाएं आप भी प्रेम को पहचानने के योग्य हो जांयेगे। 'प्रेम' में ढ़ाई अक्षर हैं, 'आत्मा', 'इष्ट' और 'भक्ति' में भी ढ़ाई अक्षर हैं अर्थात् प्रेम ही आत्मा है, प्रेम ही इष्ट है और प्रेम ही भक्ति है।

प्रेम करने का मतलब है कि आप उसे प्रेम करें जो प्रेम करने के योग्य नहीं है। प्रेम में कोई गलती नहीं होती, सारी गल्तियां प्रेम के न होने के कारण से दिखाई पड़ती हैं। यदि आप ईश्वर से प्रेम करना चाहते हैं तो उन सबसे प्रेम करो जो ईश्वर ने बनायें हैं–जड़ और चेतन से समान रूप से, अपनों से परायों से भी। एक धूल का कण, वनस्पति का नन्हा सा अंश, पशु एवं पक्षी सभी उस मालिक के अंश है अतः यदि तुम इन्हें मालिक से अलग नहीं समझकर एकत्व भाव से प्रेम करोगे तो तुम्हें मालिक के सम्पूर्ण दर्शन इनमें हो जांयेगे।

अहंकार या दुई का मिटना ही प्रेम है क्योंकि 'प्रेम गली अति सांकरि, ता में दो न समाय।' प्रेम करने से पहले प्रेम के स्वरूप का ज्ञान होना चाहिए अन्यथा प्रेम के पवित्र अमष्त में मोह और अहंकार का विष धुल जाएगा और अर्थ का अनर्थ हो जाएगा। प्रेम का प्रथम स्थूल रूप सेवा है जो निष्काम होनी चाहिए। प्रेम का दूसरा सूक्ष्म रूप भक्ति है और सच्ची भक्ति वही कर सकता है जो अपने इष्ट को अपने से दूसरा नहीं समझता अर्थात् जो विभक्त नहीं है। प्रेम का तीसरा कारण रूप ज्ञान है जो जीवात्मा और परमात्मा की एकता का ज्ञान देता है। प्रेम का चौथा महाकारण रूप शब्द है जो अव्यक्त, अनाम और अशब्द गति का पता देता है। प्रेम का पांचवा रूप निज स्वरूप का मालिक में लय हो जाना है इसकी व्याख्या नहीं की जा सकती।

लैला–मजनूं का प्रेम 'प्रेम' की सच्ची परिभाषा है। पहले मजनूं ने लैला से शारीरिक रूप से निस्वार्थ प्रेम किया, इसमें उसे शारीरिक चोटें भी पहुचाई गईं लेकिन फिर भी वह नहीं डगमगाया। फिर उसने मानसिक रूप से प्रेम किया और दीवाना बन गया। एक बार उस राज्य के वजीर ने जिसमें लैला रहती थी ने मजनूं की हालत पर रहम करके उसे अपने दरबार में बुलाया और कहा कि मजनूं तो इन सुंदर लड़कियों में से किसी एक को पसंद करके शादी कर ले मुझसे तेरी यह दीवानगी देखी नहीं जाती। मजनूं बिना कुछ कहे वहां से चला आया। जब दरबान ने पूछा कि तूने वजीर की बात क्यों नहीं मानी तो वह बोला तुम्हारे वजीर के पास मजनूं जैसी निगाह नहीं है जो मेरी लैला को पहचान सके। फिर उसका प्रेम और परवान चढा तो उसे हर जगह हर जिन्स में अपनी लैला ही दिखाई देने लगी। जब उसका प्रेम हद से ज्यादा बढ़ गया तो सोते–जागते, उठते–बैठते सांस–सांस में लैला ही लैला कहता हुआ लैला–मय हो गया, गुमसुम हो गया, किसी से कुछ नहीं कहना बस अपने आप में ठहर गया। एक दिन किसी ने लैला से आकर कहा कि लैला तेरा दीवाना सड़क पर बेसुध पड़ा है जाकर

एक बार तो मिल ले। जब लैला उसके पास आती है और कहती है मजनूं! आंख खोल देख मैं तेरी लैला तेरी पास आ गई। मजनूं बड़ी मुश्किल से कहता है कौन लैला! कौन मजनूं! कहां है मजनूं कहां है लैला और यह कहकर वह चुप हो जाता है और फिर उसकी रूह शरीर से निकल जाती है। यह प्रेम की पांचवी अवस्था है।

हजूर मानव दयाल जी महाराज अपने सत्संगों में कहते थे कि एक प्रेम तो वह होता है जो ऊपर से नीचे को स्वाभाविक रूप से बहता है जैसे बड़े का छोटों के प्रति इसे वात्सल्य प्रेम कहते हैं। एक प्रेम वह होता है जो नीचे से ऊपर की ओर चढ़ता है जैसे बड़ो के प्रति आदर भाव इसे बड़ो के प्रति श्रद्धा प्रेम भी कहते हैं। तीसरा प्रेम बराबर वालों के साथ होता है जिसे मैत्री प्रेम भी कहते हैं। एक प्रेम पति और पत्नी के बीच होता है जिसे दामपत्य प्रेम कहते हैं। और एक प्रेम मालिक के या गुरू के प्रति होता है जिसे परा–प्रेम कहते हैं। प्रेम की वैसे कोई परिभाषा नहीं होती और न प्रेम को किसी भाषा में बांधा जा सकता है क्योंकि प्रेम स्वयं अपने आप में असीम और अव्यक्त है। जिस प्रकार मालिक के सभी नाम और रूप कल्पित हैं लेकिन मालिक की अभिव्यक्ति के लिए नाम और रूप का सहारा लेना पड़ता है उसी प्रकार प्रेम के भी सभी नाम और रूप कल्पित हैं लेकिन प्रेम को अभिव्यक्त करने के लिए नाम और रूप का सहारा लेना पड़ता है।

प्रेम अपना रास्ता स्वयं बनाता है किसी दूसरे के पद्चिन्हों पर प्रेम कभी नहीं चलता। मीरा बाई का अपना प्रेम का रास्ता था तो सन्त रविदास का अपना, कबीर का अपना प्रेम का रास्ता था तो गुरू नानक देव का अपना, राय साहिब सालिगराम का अपना रास्ता था तो बाबा फकीर का अपना, हुजूर मानव दयाल जी का अपना रास्ता था तो हुजूर शब्दानन्द जी का अपना, हनूमान का अपना रास्ता था तो अंगद का अपना, भरत का अपना रास्ता था तो लक्ष्मण का अपना, कौशल्या माता का अपना रास्ता था तो केकैय माता का अपना, अर्जुन का अपना रास्ता था तो उद्धव का अपना। कहने का तात्पर्य यह है कि किसी ने भी दूसरे की नकल

नहीं की, लेकिन पहुंचे सभी अपने–अपने रास्तों से एक ही मंजिल पर अर्थात् प्रेम अपनी मंजिल स्वयं है। प्रेम में द्वैत और अद्वैत नहीं है। प्रेम मालिक की धार है और उसी धार के सहारे आधार तक स्वयं प्रेम ही पहुंचा सकता है, अन्य सब प्रयास केवल साधन मात्र हैं और साधन साधन होते हैं साध्य नहीं जबकि प्रेम साधन भी है और साध्य भी। जैसे शब्द और धुन एक ही है, शब्द और सुरत एक ही है और धुन या सुरत के सहारे शब्द को पकड़ा जाता है उसी तरह प्रेम के सहारे ही प्रेम को पकड़ा या अनुभव किया जा सकता है।

कबीर साहब प्रेम के बारे कहते हैं–

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नांह।
सीस उतारै भुइं धरै, तब पैठै घर मांह।। 1
सीस उतारै भुइं धरै, ऊपर राखै पांव।
दास कबीरा यों कहै, ऐसा होय तो आव।। 2
प्रेम न बाड़ी ऊपजे, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा रानी जो रूचै, सीस देइ ले जाय।। 3
प्रेम पियाला सो पिये, सीस दक्षिना दे।
लोभी सीस न दे सकै, नाम का प्रेम का ले।। 4
छिन रोवै छिन में हंसे, सो तो प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कहावै सोय।। 5
प्रेम प्रेम सब कोइ कहै, प्रेम न चीन्हें कोय।
आठ पहर भीना रहे, प्रेम कहावै सोय।। 6
प्रेम पियारै लाल सों, मन दे कीजै भाव।
सत्गुरू के परताप ते, भला बना है दाव।।7
जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जान मसान।
जैसे खाल लोहार की, सांस लेत बिन प्रान।। 8
प्रेम बिना धीरज नहीं, बिरह बिना बैराग।
सतगुरू बिना मिटे नहीं, मन मनसा का दाग।। 9
प्रेम भक्ति में रूचि रहे, मोक्ष मुक्ति फल पाय।
शब्द मांहि जब मिल रहे, नहिं आवे नहिं जाय।। 10
प्रेम ढूंढ़त मैं फिरूं, प्रेमी मिलै न कोय।

प्रेमी सों प्रेमी मिलै, गुरू भक्ति दष्ढ़ होय।।11
प्रेम छुपाया ना छुपै, जा घट परगट होय।
जो पै मुख बोलै नहीं, नैन देत हैं रोय।। 12
जोगी जंगम सेचड़ा, सन्यासी दुरवेश।
बिना प्रेम पहुंचे नहीं, दुर्लभ सत्गुरू देश।। 13
पीया चाहे प्रेम रस, राखा चाहै मान।
एक मियान में दो खड़क, देखा सुना न कान।। 14
कबीर प्याला प्रेम का, अन्तर लिया लगाय।
रोम रोम में रम रहा, और अमल क्या खाय।। 15
जब मैं था तब गुरू नहीं, अब गुरू हैं मैं नाहैं।
प्रेम गली अति सांकरी, ता में दो न समायैं। 16
नैनों की कर कोठरी, पुतली पलंग विछाय।
पलकों की चिक डाल कर पिया को लिया रिझाय।। 17
जब लग मरने से डरै, तब लग प्रेमी नांह।
बड़ी दूर है प्रेम घर, समझ लेहु मन मांह।। 18

मालिक सबका कल्याण करे!

पुष्कर दयाल

(नोट– पृष्ठ 28 पर जो कविता लिखी है उसे दिनांक 25.12.14 को सत्संग से पहले पढ़ कर सुनाया गया था जिसे परम संत हुजूर पुष्कर दयाल महाराज ने बहुत सराहा और उन्हीं के आदेश पर यहां छापा जा रहा है। इस शब्द से साफ पता चलता है कि वर्तमान पीढ़ी हमारे सामान्य व्यवहार से कितनी आहत है। अतः अपने लिए न सही भावी पीढ़ी के लिए तो हमें अपने व्यवहार को सही दिशा देनी चाहिए और इस के लिए संत सतगुरू वक्त की बहुत जरूरत होती है।) जन. सेक्रे.

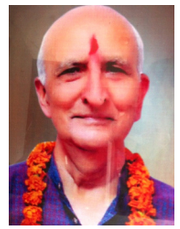

सत्संग परम संत हुजूर पुष्कर दयाल जी महाराज

(दिनांक 21.12.2014 दुर्गापुर)

राधास्वामी!

गुरू नानक देव जी ने कहा है कि कोई कहे कि अगर किसी ने सुई में से ऊँट को निकाला हे तो मैं मान जाऊँगा लेकिन यदि कोई यह कहे कि मैं ज्ञानी हूं या विद्वान हूं तो मैं कभी नहीं मानूंगा क्योंकि भगवान का कोई रूप ही नहीं है।

नहीं रूप कोई हैं सब रूप तेरे।
तेरी सब ही प्रजा हैं और भूप तेरे।।

एक बार एक बहुत बड़े संत का एक पत्रकार इन्टरव्यू ले रहा था। पत्रकार महोदय ने संत से पूछा, "क्या आपने भगवान को देखा है?" संत ने कहा हाँ! मैं भगवान से मिला हूं और मैंने भगवान को देखा भी है। पत्रकार पूछता है कैसे? संत कहता है भगवान तो मेरे सामने खड़ा है, आप ही भगवान का रूप हो। कहने का तात्पर्य यह है कि एक समय ऐसा आता है जिसको हम सहज समाधि कहते हैं। कबीर साहब कहते हैं कि ऐसी अवस्था में पहुंचने के बाद खुली आंखों से भी देखने पर यह सारा संसार भगवान का रूप नजर आता है। जब हम कहते हैं कि कण–कण में भगवपन हैं तब इसका मतलब यही है कि हर कण उसी का रूप है। क्यों? क्योंकि हर कण उसी ने बनाया है।

हमारे वैज्ञानिक कहते हैं कि यह पृथ्वी 13 मिलियन साल पहले बनी है। अगर वैज्ञानिकों की इस बात को मान भी लें कि अरबों–खरबों चांद–सितारे 13 मिलिचन साल पहले बने हैं तो इसका मतलब यह हुआ कि उससे पहले कुछ नहीं था, अंधेरा ही अंधेरा था। तो फिर सवाल पैदा होता है कि जब कुछ नहीं था और चारों तरफ अंधेरा ही अंधेरा था तो उस समय भी अंधेरे के रूप में कुछ तो था जिसने यह सब कुछ बनाया, जिसने यह सब रचना की। उस कुछ का हमने नाम रखा परमात्मा। अब सोचो कि जब

उस अंधेरे में केवल वही था तो हम सब कहां थे, यह रचना कहां थी। हम सब उस समय भी उसी में समाये हुए थे, तभी तो हम उसी से निकल। उसने एक कल्पना की कि मैं एक से अनेक हो जाऊँ और वह अनेक रूपों में प्रकट हो गया। इसी अर्थ में कहते हैं कि कण–कण में भगवान हैं। यह सारी सृष्टि उसी से प्रकट की है, यह सारा खेल उसी ने रचाया है। इस अर्थ में गुरू नानक देव जी सच कहते हैं कि अगर कोई यह कहता है कि मैं बड़ा विद्वान हूं, ज्ञानी हूं, मैंने भगवान को देखा है, तो समझ लो कि वह झूठ बोल रहा है। क्योंकि उसकी महिमा को तो कोई जान ही नहीं सकता। दाता दयाल जी कहते हैं–

गुरू की महिमा कौन गाये, उसका गाना है कठिन।
पहुंचने वाले कहां तुझ, तक हैं बानी और बचन।।1
बुद्धि निर्णय कर नहीं सकती, न चित चिंतन के योग।
सोचने और समझने की, शक्ति पाता हे न मन।। 2
ज्ञानी अपनी युक्ति भूले, ध्यानी भूले ध्यान कर।
योगी थककर हार बैठे, कर चुके जब सब जतन।। 3
तू नहीं काशी न मथुरा, द्वारका में तू नहीं।
ढूंढने बन खंडी और, तपसी चले हैं सूना बन।। 4
मेरे हृदय में बसा रहता है, निस्सन्देह तू।
राधास्वामी भेद बतलाया, लगी तुझसे लगन।। 5

उसकी महिमा कोई नहीं जान सकता, कोई नहीं गा सकता उसका जानना बहुत कठिन है। यदि मैं कहता है कि मैं मालिक को जानता हूं, मैं ज्ञानी हूं तो मैं अपने आपको गाली दे रहा हूं। जब उसकी महिमा किसी ने नहीं जानी तो मैं कैसे कहूं कि ज्ञानी हूं। इसलिए मैं भी ज्ञानी नहीं हूं। जो कहता है कि उसने सब कुछ पढ़ लिया है और वह ज्ञानी बन गया है, यह उसका अहंकार है। क्योंकि ज्ञान की कोई सीमा ही नहीं होती है, ज्ञान का कोई अन्त नहीं है। मन, बानी और बचन उस तक पहुंचने वाले नहीं है, बुद्धि भी वहां तक नहीं पहुंच सकती।

हुजूर शब्दानन्द महाराज जी प्रायः अपने सत्संगों में हुजूर महाराज का यह शब्द गाया करते थे–

एक पुरूष अजायब पाया।
कोई भेद न उसका गाया।

बड़े–बड़े ज्ञानी अपने बुद्धि और ज्ञान के बल पर उसकी खोज करके थक गये लेकिन उनके हाथ कुछ नहीं आया, बड़े–बड़े योगी योग करके हार गये उनके हाथ भी कुछ नहीं आया। जो तपस्वी उस मालिक को ढूंढ़ने सूने वन या जंगलों और पर्वतों पर जाते हैं उनके हाथ भी कुछ नहीं लगता क्योंकि वह कहीं बाहर नहीं रहता, न काशी में रहता है न मथुरा में रहता है, न द्वारका में रहता है। फिर वह कहां रहता है? वह निस्संदेह मेरे और आपके हृदय में रहता है। वह हरेक के हृदय में बसा रहता है और हम बेकार में उसे बाहर में यहां–वहां ढूंढ़ते फिरते हैं। वह हर समय और हर पल हमारे साथ है। वो हर पल हमारी रक्षा करता रहता है। हम ही ऐसे नाफलक हैं जो उसको अपने से दूर समझते हैं।

एक बेटा बाजार जाता है और दुकानदारों से उधार लेकर अय्यासी में पैसा बरबाद कर देता है। जब वे दुकानदार अपना पैसा लेने के लिये उसके पिता के पास आते हैं तो वह उनका पैसा लौटा चुका देता है। लेकिन वह नालायक बेटा फिर जाकर उधार करता है और अपने बाप को परेशान और बदनाम करता है। हम सब भी यही कर रहे हैं। हम हर बार मौज मस्ती करके अपने ऊपर कर्जा चढ़ा रहे हैं। अब इस जीवन में तो हमें समझ लेना चाहिए कि यह जीवन मौज–मस्ती के लिए नहीं मिला, दारू पीने के लिए नहीं मिला। हुजूर शब्दानन्द जी महाराज कहते थे कि हम सब यहां पापड़ बेल रहे हैं, कोई यहां सुखी नहीं है। यह जन्म हमें इसलिए मिला है कि कि हम अपने कर्मों की टोकरी जो साथ में लाये हैं, उसे खाली करके जांय, यह हमारे लिए एक मौका है लेकिन हम अपने कर्मों की टोकरी को और भी ज्यादा भारी बनाते जाते हैं। इस प्रकार यहां कोई मौज–मस्ती करने नहीं आता। यदि किसी ने अपने

कर्मों की टाकरी खाली कर ली तो उसका पुर्नजन्म नहीं होता।

हमारी बहू थी, दो महिने पहले ही चली गई। मेरे बेटे से वह बहुत प्यार करती थी। बेटा भी उससे बहुत प्यार करता था। अपने जीवन के अन्तिम दिन बहु ने बेटे की गोद में ही प्राण त्याग दिये। उसने एक सेकेण्ड के लिए भी यह नहीं सोचा कि यह मेरा पति है, मुझसे बहुत प्यार करता है, मैं इसे छोड़ कर क्यों जाऊँ? एक सेकेण्ड के लिए भी उसने अपने पति के बारे में नहीं सोचा और छोड़कर चली गई। बस आंख बदं की और ना तू मेरा पति ना मैं तेरी पत्नी, सब खत्म हो गया। हमारा रिस्ता इतना ही था और यहीं खत्म। यही है संसार। हम समझते हैं कि हम यहां मौज–मस्ती करने के लिए आये हैं, नहीं। किसी ने लम्बी गाड़ी खरीदी, नया शानदार बंगला बनवाया लेकिन किसी ट्रक ने टक्कर मार दी, गाड़ी चकनाचूर हो गई, एक भूकम्प का झटका आया और बंगला ढ़ह गया। इसी लिए कहते हैं कि यह संसार माण है, धोखा है, सपना है।

कल टी0 वी0 पर एक शो आ रहा था। उसमें सीरिया के भूकम्प का दृश्य दिखा रहे थे, जिसमें बड़ी–बड़ी कोठी और बंगले खंडहर होते दिखाई दे रहे थे। एक मैदान में हजारों कारों का मलबा पड़ा हुआ था। तो यह है संसार। क्या इस पर हम विश्वास करें? कबीर साहब कहते हैं–

रहना नहीं देश बेगाना है।
ये संसार कागज की पुडिया, बूंद पड़े गल जाना है।
यह संसार झाड़ और झोपड़ आग लगे जल जाना है।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सत्गुरू नाम ठिकाना है।

इस संसार में सब कुछ नाशवान है,, सब कुछ मिथ्या है, माया है। इस संसार में केवल एक ही चीज सच्ची है और वह है सत्गुरू। इसलिए इस संसार में जितने भी प्राणी है सब दुखी हैं क्योंकि वे सब असत्य चीजों को सत्य मान कर उनसे मोह कर बैठे हैं। और उस मोह ममता के कारण बार–बार जन्म लेकर आते रहते हैं। इसलिए मैं कहता हूं कि क्यों हम इस बार इस पर ब्रेक लगा दें और यहां से सब बंधनों से छुट्टी करके स्थाई रूप से अपने निज

घर को वापस चले जांय।

और इस अवस्था को प्राप्त करना कोई मुश्किल काम नहीं हैं क्योंकि वह मालिक जिसकी तलाश हम बाहर कर रहे हैं वह तो हमारे हृदय में ही बसा रहता है, बस उसका अन्तर में ही अनुभव कर लो और अपने निज घर को स्थाई रूप से चले जाओ। इसका भेद संतसत्गुरू वक्त अपने सत्संगों में जिज्ञासु अधिकारी को बता देता है। उसी को कहा है 'राधास्वामी भेद बताया'। भेद क्या है, भेद यही है कि वह कहीं बाहर नहीं है, वह तुझसे अलग दूसरा नहीं है। लेकिन यह तभी संभव हो पाता है जब हमें उस सत्गुरू से सच्चा प्रेम हो जाता है क्योंकि 'बिना प्रेम रीझे नहीं तुलसी नन्दकीशोर'। कबीर साहब कहते हैं–

तेरा हीरा हिराना कचरे में।

हमारे पास एक हीरा था वो कचरे में कहीं खो गया और हमें पता नहीं कि वह हीरा कहां खो गया है। हम उस हीरे की खोज यहां–वहां, जहां–तहां करते फिरते उम्र गुजार देते हैं लेकिन वह हीरा हमारे हाथ नहीं आता। संतसत्गुरूवक्त यही बताने के लिए आता है कि हे मानव! वह कचरा तेरा शरीर ही है और इसी में वह हीरा खोया हुआ है और सारे शरीर में ही नहीं, बल्कि तेरी खोपड़ी में जो मन है उसमें तेरा हीरा खो गया है और मिलेगा भी वहीं। इसलिए उसे वहीं खोजो। तभी तो कहा है कि 'मेरे हृदय में बसा रहता है निस्संदेह तू'। जब गुरू उसका तरीका बताता है तब पता लगता है।

कबीर साहब कहते हैं–

'जिन खोजा तिन पाइंया, गहरे पानी पैठ।
मैं अभागिन डूबन डरी, रही किनारे बैठ।'

जो किनारे पर बैठा रहता है अर्थात् मन के विचारों में ही डोलता रहता है उसे मोती नहीं मिलता। जो मन की सीमा को लांघकर गहरे पानी में गोता लगाता है उसे ही मोती मिलता है।

भाग्यशाली हैं वो जिनको इस संसार में गुरू मिलता है और रास्ता बताता है, बाकी लोग तो कीड़े–मकौड़ों की तरह जन्मते और

मरते रहते हैं। गुरू भी कौन सा? गुरू तो बहुत हैं। एक पत्थर मारों तो वह दस गुरू के ऊपर पड़ेगा। कुछ गुरू तो एक–एक लाख रूपये में शिष्य बनाकर स्वर्ग में भेजने का टिकट दे देते हैं। लेकिन एक सच्चा गुरू तुम्हारा कल्याण करने के लिए पैसे नहीं लेता। स्वामी जी महाराज कहते हैं–

'गुरू नहीं भूखा तेरे धन का, उस पर धन है नाम रत्न का।
पर तेरा उपकार करावें, भूखे नंगों को दिलवाये।'

शब्दानन्द जी महाराज की पेन्शन आती थी, वो सबसे पहले उस पेन्शन को मुझे देते थे। आश्रम का कभी नहीं खाते थे। ऐसा सन्त मिलना दुर्लभ है और जिसको मिल जाय वह महा भाग्यशाली है। इसलिए कबीर साहब कहते हैं–

'सतगुरू खोजो रे भाई, जग में दुर्लभ रतन यही।'

तो इस प्रकार संसार में दुर्लभ रत्न यानी सच्चे गुरू को खोजो। गुरू को खोजने तुमने कहीं नहीं जाना है। अगर तुम गुरू को खोजने जाओगे तो किसी ठग या ढ़ोंगी के पास पहुंच जाओगे जो तुमको अपने जीवन भर अपनी कमाई का सहारा बना लेगा। तुम्हारे धन पर उसकी निगाह रहेगी। यदि तुम्हें सच्चा गुरू चाहिए तो उसकी सच्ची तड़फ अपने मन–मंदिर में पैदा करो। जितनी ज्यादा तड़फ होगी उतनी ही जल्दी मौज से आपको आपका गुरू मिल जायगा। या तो स्वप्न में या जाग्रत में आपको ऐसा संकेत दे जायगा कि आपको आपका गुरू मिल जायगा। क्यों? क्योंकि हरेक का गुरू निश्चित है।

राधास्वामी!

सूचना

इस बार 25 दिसम्बर 1914 को धुरपद धाम दुर्गापुर में परम संत हुजूर पुष्कर दयाल जी की मौज से एक सत्संग का आयोजन किया गया जो बहुत सफल रहा। अब ऐसा कार्यक्रम आगामी 25 दिसम्बर को भी हुआ करेंगें। ज. से.

सुख की खोज

(आचार्या निर्मला बहन, फरीदाबाद)

गतांक से आगे.....

हमारे दुखों का एक कारण यह भी है कि हम अपने अहंकार के कारण अपनी कमी या अपना दोष देख ही नहीं पाते, यदि कोई हमें हमारी कमी या दोष बताता भी है तो हम बड़ी चतुराई से उस दोष को किसी और के मत्थे मढ़ देते हैं और स्वयं पाक–साफ बने रहते है। जैसे मष्यु मौत का कोई न कोई बहाना पैदा करके मष्यु को आमंत्रित करती है और स्वयं पाक–साफ बनी रहती है, वैसे ही हम भी अपनी गलतियों या असफलताओं का दोष दूसरों के सिर पर मढ़ कर निश्चिंत हो जाते हैं और जो अवसर हमें सुधरने का मिला था (अपनी गलती की माफी मांग कर) उसे हम गंवा देते हैं। फिर दुखों का पहाड़ हमारे सिर पर न पड़े तो किसके सिर पर पड़े? इसलिए हम हमेशा किसी न किसी बहाने दुखी रहते हैं। हमारा अहंकार हमें झुकने नहीं देता और इसलिए हमारे दुखों का सिलसिला हमेशा जारी रहता है। आप सब समझदार हो तनिक ठहरों और सोचो! एक मीठा बोल किसी के जख्मों पर मल्हम लगा सकता है तो कडुआ बोल घाव भी कर सकता है। यदि आप किसी के व्यवहार से आहत हुए हैं तो उससे दो मीठे बोल बोलकर अपना और उसका कल्याण कीजिए, दोष किसका है यह मत ढूंढ़िये, इसमें अहंकार कैसा, देर कैसी, जब जागो तभी सवेरा।

हमारे दुखों का एक कारण यह भी हो सकता है कि यदि हमने अपने मन में किसी के प्रति भी गलत विचार बना लिया है कि अमुक व्यक्ति खराब है तो भले ही वह खराब न हो, उसका अच्छा काम भी हमें बुरा ही लगेगा। चाहे वह अपनी तरफ से आपकी सेवा करने में अपनी जान भी लगा दे तो भी आपको यही लगेगा कि वह मुझे दुखी कर रहा है। इसी भाव को मानव दयाल जी कहते थे कि 'जैसी दर्षष्टि वैसी सर्षष्टि'। यदि हमें अपने आपको सुखी बनाना है तो हमें हमारा दर्षष्टिकोण बदलना होगा। हमें दूसरों के अन्दर दोष

निकालने का अधिकार किसने दिया है? क्या दूसरे के अन्दर मालिक नहीं है यदि है तो हमें उसके अन्दर बैठे हुए मालिक के अन्दर दोष नहीं निकालने चाहिएं। हमें दूसरों को वही सम्मान देना चाहिए जिसका वह हकदार है, क्योंकि वह एक मात्र शरीर नहीं है। अगर किसी ने आपको कुछ बुरा कह भी दिया तो भी उसे अपने और उसके कल्याण के लिए भूल जाओ क्योंकि उसने जो कुछ कहा शरीर के संबंध में कहा, आपकी आत्मा के संबंध में नहीं और आप शरीर नहीं हो, आप तो अविनाशी आत्मा हो। कोई दूसरा गलती करता है और आप भी वही गलती करते हो तो दोनों बराबर हुए। इसलिए आप अपने आपको सुधारो, दूसरों की फिक्र छोड़ो। उसका कर्म उसके साथ और आपका कर्म आपके साथ। बस सुखी रहने का यही मंत्र है।

यह ऋणबन्दी संसार है। यहां जो कुछ भी हमारे साथ हो रहा है यह सब प्रारब्ध कर्मों के अनुसार ही हो रहा है। सब अपने–अपने कर्म भोग रहे हैं। यदि हम वर्तमान कर्मों को, वर्तमान संबंधों को प्रारब्ध कर्म मान कर सहज रूप से भोग लें, ज्यादा चीं–चपाट न करें तो प्रारब्ध कर्म भी कट जांएगें और नए कर्म भी नहीं बनेगें और हम सुखी रह सकते हैं। यदि इन कर्मों को भोगते हुए हम दुखी होते हैं या दूसरों से बदला लेने या उनके साथ वैसा ही बर्ताव करने का प्रयास करते हैं या विचार भी करते हैं तो हम कर्म के जाल में फंसते जा रहे हैं और न सिर्फ वर्तमान जीवन बल्कि अगला जीवन भी दुखमय बनाने का प्रयास कर रहे हैं। क्योंकि हमारा भविष्य कैसा होगा यह इस बात पर निर्भर करता है कि हम आज कैसा जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

दाता दयाल जी महाराज दुख के बारे में कहते हैं

कोई दुख सुख का नहीं, दाता तेरी है भूल सब।
कर्म अपने करते हैं, अनुकूल और प्रतिकूल सब।।1।।
कर्म की प्रधानता की, क्या नहीं तुझको समझ।
कर्म से आनन्द है, और कर्म ही है सूल सब।।2।।
यह जगत है वाटिका, करते हैं प्रानी आके काम।

कर्म के अनुसार इनके, कांटें हैं और फूल सब।।3।।
जो ठगेगा वह ठगा जायेगा, निस्संदेह आप।
प्रेमीजन ही पाते हैं, और प्रेम के बहुमूल सब।।4।।
अपनी करनी आप भरनी, पड़ती है संसार में।
अपने घर की आप उठाया, करते ही हैं चूल सब।।5।।
किस भरम में तू पड़ा, औरों की बातें छोड़ दे।
काम में लग अपने करले, कर्म निज अनुकूल सब।।6।।
राधास्वामी नाम भज, झगड़ों से बचकर रह सदा।
जो नहीं समझा तो पढ़ना लिखना होगा धूल सब।।7।।

सुख के बारे में दाता दयाल जी महाराज अन्यत्र कहते हैं–

माई सुख से जनम बिताओ।
सो सुख है गुरू चरन प्रेम में, नित गुरू के गुन गाओ।।
सुख नहीं जग प्रपंच में माई, सुख नहीं भोग बिलासा।
सुख है गुरू के प्रीति रीति में, नित आनन्द हुलासा।। माई
सुख नहीं मान बड़ाई दिखाये, सुख नहीं धन परिवारा।
सुख है अन्तरवष्ती जमाये, गुरू का ले के सहारा।। माई
सुख नहीं बाहर परबत बन में, सुख नहीं सैर तमासा।
सुख है तेरे अन्तर माई, अन्तर कर जिज्ञासा।। माई
नित उठ गुरू की भजन बंदगी, नित गुरू संगत करना।
घट में भजन हो घट में संगत, घट गुरू नाम सुमिरना।। माई
तेरे घट में गुरू बिराजे, गुरू सत चित आनन्दा।
सो गुरू रूप है तेरा माई, ढूंढ़ त्याग सब धन्दा।। माई
घट में पैठ बैठ कर पूजा, घट मंदिर उजियारा।
घट में पिंड ब्रह्माण पसारा, घट में सुख विस्तारा।। माई
राधास्वामी सतगुरू दाता, घट में तेरे विराजे।
घट दर्शन घट सेवा संगत, घट सुन आनन्द बाजे।। माई

सन्त कहते हैं कि हमारी मंजिल 'सुख' भी नहीं है, अपितु 'सुख–दुख' से परे जो परम–सुख की अवस्था है वही हमारी मंजिल है और हमें उसे ही प्राप्त करना है। उस अवस्था को प्राप्त करने के

लिए प्राणी को प्राणी के प्रति प्रेम भाव रखना चाहिए, 'बिना प्रेम रीझे नहीं तुलसी नन्द किशोर'। 'प्रेम' बिना कोई सुखी नहीं रह सकता। प्रेम ही 'सेवा' है, प्रेम ही 'भक्ति' है और इन सबका फल 'सुख' है। यह स्थाई सुख हमें हमारे अन्तर में ही मिलता है, बाहर संसार की वस्तुओं में स्थाई सुख नहीं है, बाहर तो मषा–तष्णा है। सच्चा 'सुख' हमें समर्पण के बाद ही अनुभव होता है, लेकिन हमारा अहंकार समर्पण भी नहीं करने देता। यह अहंकार हमारे मन का सबसे अधिक शक्तिशाली औजार है। मन काल का एजेन्ट है और काल को इस संसार को चलाना है, इसलिए काल नहीं चाहता कि इस संसार में कोई प्रेम करे, कोई सुखी रहे। जब इंसान दुखी होगा तो वह उल्टे–सीधे काम करेगा और कर्म के जाल में फंसता जाएगा। काल उसे कर्म बंधन में फंसा कर बार–बार इस संसार में आने के लिए मजबूर करता है ताकि उसकी दुकनदारी चलती रहे, यह संसार चलता रहे। अब आपको दुखों के कारण और उनको दूर करने का तरीका भी बता दिया और साथ ही यह भी बता दिया कि सुख कहां और कैसे मिलता है? अब आगे की आप जानो क्योंकि आपकी इच्छा के बिना तो स्वयं ईश्वर भी आपको सुखी नहीं बना सकता।

इस संबंध में पुराण में एक कथा आती है। नारद मुनि एक बार जब पष्थ्वीलोक का भ्रमण करके स्वर्ग को लौटे तो उन्होंने विष्णु जी से कहा कि महाराज पष्थ्वीलोक में जीव बहुत दुखी हैं उनका उद्धार कर दो। विष्णु भगवान ने कहा कि नारद यह काम मैं तुमको सौंपता हूं तुम जितने जीवों को लेकर आओगे उन्हें मैं मुक्त कर दूंगा। नारद इस लोक में आये और सबसे कहा कि आप लोग इस संसार में युग–युगान्तरों से दुख झेल रहे हो, चलो मैं तुम्हें वैकुण्ठ लेकर चलता हूं। एक बनिये ने कहा कि क्या वहां पर मेरा पैसा ब्याज पर चलेगा। नारद ने कहा कि नहीं तो उसने कहा कि फिर मैं नहीं जाता। इसी तरह एक अध्यापक ने कहा कि क्या वहां ट्यूशन पढ़ाने को मिलेगा तो नारद ने कहा कि नहीं फिर उसने भी मना कर दिया। इसी प्रकार कोई भी जीव इस संसार को छोड़कर वैकुण्ठ जाने को तैयार नहीं हुआ। अन्त में एक सुअर मिला और चलने को तैयार हो गया। रास्ते में उसने पूछा कि क्या वहां विष्ठा खाने को मिलेगी तो नारद ने कहा कि नहीं। वह भी आधे रास्ते

से ही वापस आ गया। कहने का तात्पर्य यह है कि आपकी दष्ढ़ इच्छा और प्रयास के बिना यदि ईश्वर भी चाहे तो आपको सुखी नहीं बना सकता लेकिन यदि आप चाहो तो अपने आपको उपरोक्त रीति से किसी गुरू के मार्ग–दर्शन में रहकर परम–सुख की अवस्था प्राप्त कर सकते हैं। अब निर्णय आपने करना है, यह अवसर बार–बार नहीं आता, चौरासी लाख योनी के बाद मानव तन मिलता है और मानव तन में रहकर ही इस अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है, अन्य में नहीं।

गुरूदेव सबका कल्याण करें!

पृष्ठ 51 का शेष भाग

हो सकता है कि अन्य अनेक श्रद्धालुओं की भावनाएं उनके अंदर ही सिमट कर रह गई हो, कागज पर न उतर पाई हो (सच्ची श्रद्धा कागज पर उतर भी नहीं सकती क्योंकि वह तो मन, वाणी से परे है) तो मैं मालिके–कुल्ल हुजूर पुष्करदयाल जी महाराज से उन सभी श्रद्धालुओ से लिये विनती करता हूं कि वे अपनी कृपा उन सब और हम सब पर बनायें रखें क्योंकि–

मूकं करोति वाचालं पगुं लंघ्यते गीरीन।
तत्कृपा तम् हम बन्दें बंदौ जगत्गुरूम्।।

अन्त में दो शब्द मालिके–कुल्ल के उस स्वरूप के बारे में कहना चाहता हूं जिनको 'मानवदयाल' नाम उनके गुरू बाबा फकीर ने दिया था, 'ईश्वरचन्द्र' उनके माता–पिता ने दिया था,, 'शर्मा' इस समाज ने दिया था तथा 'डाक्टर' की उपाधि इस संसार ने दी थी, जो स्वेच्छा से प्रकट हुये थे और स्वेच्छा से अप्रकट होकर अपना मिशन का झण्ड़ा जो उनको उनके गुरू ने दिया था आगे सशक्त हाथों में थमाकर निज धाम को चले गये की याद में एक शताब्दी ग्रन्थ अगले वर्ष 2016 तक छापने का संकल्प है। अतः सभी श्रद्धालु एवं अश्रद्धालु बंधुओं से कर बद्ध प्रार्थना है कि वे अपनी भावनाऐं कागज पर लिखकर श्री नरेश शर्मा जनरल सेक्रेटरी, धुरपदधाम, दुर्गापुर जिला पलवल को 30 जून 15 तक अवश्य भेज दें ताकि उनको उस ग्रन्थ में स्थान मिल सके। वैसे यह मानसिक विचार मूर्तरूप लेने लग गया है और दोसौ पन्नों के लगभग सामग्री तो तैयार हो चुकी है। कृपया इस विषय में अपना पूरा सहयोग दे (पूरा सहयोग) दें।

विनीत–अजय कपिला, सन्तोषगढ़ हि.प्र.

मेरे अध्यात्म देव हुजूर पुष्कर दयाल जी

(आचार्या बहन निर्मला, फरीदाबाद)

जब परम संत महर्षि शिव ब्रत लाल जी बर्मन (दाता दयाल जी महाराज) अपने निज धाम जाने की तैयारी कर रहे थे (उन्होंने अपना खाकी चोला 21 फरवरी 1939 को छोड़ा था) उसी समय एक अन्य महान आत्मा अवतरित होने को उत्साहित हो रही थी और वह महान आत्मा वर्तमान समय में परम संत हुजूर पुष्कर दयाल जी के नाम से खाकी वर्दी में जानी जाती है। हुजूर पुष्कर दयाल जी का जन्म 13 मई 1939 में हुआ था लेकिन हाई स्कूल की परीक्षा के मानक के लिए इनकी जन्म तिथि 13 मई 1038 लिख दी गई थी। कहते हैं कि हुजूर शिव ब्रत लाल जी महाराज की माता जी बचपन में ही परलोक सिधार गईं थीं और यह भी संयोग की ही बात है कि हुजूर पुष्कर दयाल जी महाराज की माता जी भी जब ये मात्र चार वर्ष के थे परलोक सिधार गईं थीं और इनके पिता जी, जब ये मात्र तीन वर्ष के थे, का साया इनके सिर से उठ चुका था। इनकी माता जी का नाम श्रीमति अरूणा गंजू था और पिता जी का नाम श्री आनन्द गंजू तथा दादा जी नाम श्री लक्ष्मण गंजू था। ये अपने सात भाई और एक बहन में सबसे छोटे थे। सबसे छोटे होने के कारण और माता–पिता का साया न होने के कारण घर में सब इनको बहुत लाड़–प्यार करते थे, इसलिए किसी ने भी इनको स्कूल नहीं भेजा और ये ग्यारह वर्ष तक स्कूल ही नहीं गये।

जब ये ग्यारह वर्ष के हो गये तब इनके एक अंकल श्री नीलकंठ जी अध्यापक के पद से रिटायर होने के बाद इनके पड़ौस में आकर रहने लगे। उन्होंने जब इस होनहार बच्चे को देखा तो बहुत प्रभावित हुये लेकिन जब उन्हें यह ज्ञान हुआ कि यह बच्चा अभी तक (11 वर्ष तक) स्कूल ही नहीं गया है और न कोई पढ़ाई–लिखाई की है तब उन्होंने इनको पढ़ाने–लिखाने का बीड़ा उठाया। वे सितम्बर मास में बाजार से और इनके लिए आठवी कक्षा की किताबों का पूरा सेट खरीद लाये और इन्हे पढ़ाना–लिखाना

शुरू कर दिया। उन्होंने इनको मात्र तीन माह के अन्दर ही आठवीं कक्षा का सारा कोर्स पूरा करा दिया। दिसम्बर माह में वे आठवी कक्षा की किताबें वापस करके नवीं कक्षा की किताबों का सेट खरीद लाये और फरवरी माह तक नवीं कक्षा के कोर्स की पढ़ाई पूरी करा दी। उनके एक मित्र थे जो किसी प्राइवेट स्कूल में प्रिंसीपल थे। वे इनको साथ लेकर उस प्रिंसीपल के पास गये और कहा कि इस बच्चे को अपने स्कूल के और बच्चों के साथ नवीं कक्षा में परीक्षा देने की अनुमति प्रदान कर दो। यदि यह पास हो जाता है तो ठीक है वरना देखा जायगा। और ये परीक्षा में पास हो गये।

अप्रेल माह में इनका विधिवत दसवीं कक्षा में नियमित विद्यार्थी के रूप में दाखिला हो गया और ये दसवीं कक्षा में भी पास हो गये। उसके बाद ये चार वर्ष तक कालेज गये–इन्होंने दो वर्ष में इन्टरमीडिएट पास किया और दो वर्ष में बी0 ए0 किया। उसके बाद इन्हें गाजियाबाद में आगरा यूनिवर्सिटी से एल0 एल0 बी0 करने के लिए दाखिला दिला दिया क्योंकि इनके पिता जी की यही इच्छा थी कि यह बच्चा वकील बने और वकालत करे। लेकिन गरीबी के कारण इन्होनें पढ़ाई छोड़ दी और नौकरी करने लगे। इन्हें दिल्ली में सरकारी कोआपरेटिव सोसाइटी में नौकरी मिल गई लेकिन ये वहां ज्यादा दिन नहीं टिक पाये।

1964 में इनकी शादी हो गई। उसके बाद ये कलकत्ता चले गये और वहां एक जूट मिल में निर्यात (एक्सपोर्ट) विभाग में नौकरी मिल गई। वहां भी इनका मन नहीं लगा और ये फिर से फरीदाबाद आ गये। एक बार इन्होंने कृषि की जमीन खरीदकर खेती भी की और गेंहूं और सरसों बोये लेकिन उसमें भी नुकसान हो गया और वह जमीन भी औने–पौने दामों में बेच दी। उसके बाद इन्होंने फिर से एक प्राइवेट कम्पनी में नौकरी कर ली। वहां इन्हें एक मित्र मिले जिन्हें व्यापार करने का बहुत शौक था। इन्होंने मिलकर एक बरफखाना खोला। लेकिन व्यापार करना दोनों की ही किस्मत में नहीं था। इसलिए जब बरफ बन कर बाजार में आने लगी तब बरफ के दाम इतने गिर गये कि लागत भी पूरी नहीं पड़ती थी। इसलिए

वह बरफखाना भी इन्हें बंद करना पड़ा। उसके बाद इन्होंने दूध की डेयरी का काम शुरू किया और कुछ भैंसें खरीद लीं और भैंसों को पालने के लिए नौकर भी रखे। कुछ दिन बाद भैंसे भाग गईं और इन्हें वह धन्धा भी बन्द करना पड़ा। इसके बाद इन्होंने जमीन का कारोबार किया और जमीन खरीदकर प्लाट काटने तथा बेचने का काम किया। जब इन्होंने जमीन खरीदी थी तब तो जमीन के अच्छे दाम थे और जब इन्होंने प्लाट बेचना शुरू किया तो जमीन की कीमत गिर गई और मूल रकम भी वापस नहीं मिली। अतः वह धन्धा भी बन्द करना पड़ा। ये कहते हैं कि जो भी हुआ अच्छा ही हुआ जो भी होता है अच्छे के लिए ही होता है। यदि मैं इन धन्धों में से किसी भी एक धन्धे में कामयाब हो जाता तो आज नोट गिनता हुआ होता और आपकी सेवा न कर रहा होता।

ये कहते हैं कि इस बीच में एक चमत्कार हो गया। फरीदाबाद में इन्हें गुरू मिल गये। गुरू इनके घर चल कर आये। हुआ यूं कि इनके बड़े भाई श्री डी0 एन0 गंजू जी उस समय झांसी में रहते थे। उनकी पत्नी ने एक दिन इनकी पत्नी को टेलीफोन किया कि हमारे यहां एक स्वामी जी महाराज आ रहे हैं अगर तुम आना चाहो तो आ जाओ। इनकी पत्नी ने इनसे पूछा और इन्होंने इजाजत दे दी। इतना ही नहीं उन्होंने अपने दफ्तर के एक सहायक को जो झांसी का ही रहने वाला था को दो दिन की छुट्टी देकर कहा कि तुम घर जाने के लिए बहुत दिनों से कह रहे हो अब चले जाओ। इनकी पत्नी उसी के साथ गईं और तीसरे दिन उसी के साथ वापिस भी आ गईं। जब इनकी पत्नी ने लौटकर आकर इन्हें स्वामी जी की सारी बातें बताईं और यह भी बताया कि स्वामी जी ने उनको (इनकी पत्नी को नाम दान भी दे दिया) तो इनको लगा कि ये कैसे स्वामी जी हैं और यह कैसा नामदान है जो पहली ही मुलाकात में दे दिया। मतलब यह कि ये इस घटना से कुछ खास प्रभावित नहीं हुए।

क्रमशः

दासों में अधम

आचार्या निर्मला, फरीदाबाद

साभार–आभार

(आचार्यश्रेष्ठ श्री अजय कपिला जी)

संतमत के आदिसंत साहिब कबीर जी कहते हैं–

सब धरती कागज करूं, लेखनी सब बन राय।
सात समुद्र की मसि करौं, गुरू गुन लिखा न जाय।।

और दाता दयाल जी महाराज इस बारे में लिखते हैं–

गुरू की महिमा कौन गाये, उसका गाना है कठिन।
पहुंचने वाले कहां तुझ तक हैं, बानी और बचन।।
बुद्धि निर्णय कर नहीं सकती, न चित चिंतन के योग।
सोचने समझने की, शक्ति पाता है न मन।।
ज्ञानी अपनी युक्ति भूले, घ्यानी भूले ध्यान कर।
योगी थक कर हार बैठे, कर चुके जब सब जतन।।
तू नहीं काशी न मथुरा, द्वारका में तू नहीं।
ढूंढ़ने बन खंड़ी और, तपसी चले हैं सूना बन।।
मेरे हृदय में बसा रहता है, तू निस्संदेह आप।
राधास्वामी भेद बतलाया, लागी तुझसे लगन।।

इसी प्रकार के विचार सभी सन्त–महात्माओं ने प्रकट किये हैं और अपनी असमर्थता को अपने इष्ट को रिझाने का सोपान बनाया है। ऐसा ही एक प्रयास परमसंत हुजूर मानव दयाल जी महाराज ने भी अपने गुरू परमसंत परमदयाल बाबा फकीर के प्रति 'फकीर शताब्दी ग्रन्थ' छपवा कर किया था। अब ऐसा ही एक प्रयास परमसंत हुजूर पुष्कर दयाल जी महाराज ने अपने इष्ट परम सन्त हुजूर शब्दानन्द जी महाराज के प्रति 'शब्दानन्द विशेषांक' छपवा कर किया है। यह प्रयास अपने आप में सोपान भी है और मंजिल भी है। इस नायाब ग्रन्थ में जिन–जिन महानुभवों के उदगार छपे हैं वे साधुवाद के पात्र हैं। मैं अपना मस्तक उन सभी के चरणों में झुकाकर अपना आभार प्रकट करता हूं और उनके प्रेरणास्रोत्र परम संत पुष्कर दयाल जी के श्रीचरणों में अपना सर्वस्य (मेरा सर्वस्य मेरा अहंकार है) को साभार समर्पित करता हूं।

शेष पृष्ठ 47 पर

धुरपद धाम में आगामी सत्संग सूचना

तिथि एवं कार्य–क्रम

क्र.स.	दिनांक	समारोह विवरण	सतसंग का समय
1.	18 नवम्बर मंगलवार	परम दयाल जी का जन्म दिवस	प्रातः 10 से 1 बजे तक
2.	23 फरवरी 15 सोमवार	परम पूज्य मानव दयाल जी महाराज का जन्म दिवस	प्रातः 10 से 1 बजे तक
3.	12 अप्रेल 15 रविवार	वैसाखी महोत्सब	सांय 7.00से 9 वजे तक
4.	13 अप्रेल सोमवार	वैसाखी महोत्सव	प्रातः 10 से 1 बजे तक
5.	2 जूलाई 15 ब्रहस्पतिवार	गुरू पूर्णिमा महोत्सव	प्रातः 10 से 1 बजे तक
6.	5 सितम्बर 15 शनिवार	परम पूज्य मानव दयाल जी महाराज का जन्म दिवस	प्रातः 10 से 1 बजे तक

स्वामित्व–अखण्ड मानवता मंदिर प्रतिष्ठान न्यास पलवल
हथीन रोड़, दुर्गापुर, जिला पलवल, हरियाणा 121102
संपादक मंडल– श्री प्रेम सुख, श्रीमति मंजू शर्मा, श्री विरेन्द्र
मुद्रक–पी0 एस0 प्रींटर्स बल्लभगढ़ जिला फरीदाबाद हरियाणा
प्रकाशक–जनरल सेक्रेटरी, अखण्ड मानवता मंदिर प्रतिष्ठान
न्यास पलवल हथीन रोड़, दुर्गापुर, जिला पलवल,
हरियाणा 121102 फोन न0 09991484747

ट्रस्ट अपने पूर्व व वर्तमान संत सत्गुरूओं के विचारों के प्रति समर्पित है। शेष लेखकों के विचार व्यक्तिगत हैं, उनसे सहमति अनिवार्य नहीं है।

Visit us on:
www.akhandmanavtadham.in